सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष : 47
अंक : 4
जुलाई -2014

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाई-22002 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

प्रणम्य शिरसा विष्णुं त्रैलोक्याधिपतिं प्रभुम्।
नानाशास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीतिसमुच्चयम्।।

तीनों लोकों के स्वामी, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक परमेश्वर को प्रणाम कर मैं अनेक शास्त्रों से उद्धृत करके 'राजनीति-समुच्चय:' नामक ग्रन्थ का लेखन-कार्य आरम्भ करता हूँ।

अधीत्येदं यथाशास्त्रं नरो जानाति सत्तमः।
धर्मोपदेशविख्यातं कार्याऽकार्यं शुभाऽशुभम्।।

श्रेष्ठ मनुष्य इस शास्त्र का विधिवत् अध्ययन करके वेदादि शास्त्रों में उपदिष्ट कर्तव्य-अकर्तव्य, पुण्य-पाप, धर्म-अधर्म को ठीक-ठीक जान जाता है।

तदहं सम्प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया।
येन विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रपद्यते।।

मैं लोगों के मंगल की इच्छा से उस 'राजनीतिसमुच्चय:' का वर्णन करूँगा, जिसको जानकर मनुष्य सर्वज्ञ हो जाता है।

मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभरणेन च।
दु:खितैः सम्प्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति।।

मूर्खशिष्य को पढ़ाने से, दुष्टस्त्री का भरण-पोषण करने से और दु:खीजनों के साथ व्यवहार करने से बुद्धिमान् मनुष्य भी दु:ख उठाता है।

दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः।।

कटुभाषिणी और दुराचारिणी स्त्री, धूर्त स्वभाव वाला मित्र, उत्तर देने वाला नौकर और सर्प वाले घर में रहना - ये सब बातें मृत्युस्वरूप ही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :— शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 47 जुलाई 2014 अंक : 4

प्राग्नये तवसे भरध्वं गिरं दिवो
अरतये पृथिव्या।
यो विश्वेषाममृतानामुपस्थे वैश्वानरो
वावृधे जागृवद्भिः।

(ऋग्वेद)

हे मनुष्यों ! जो सम्पूर्ण मनुष्यों में प्रकाशमान जगदीश्वर सूर्य व पृथ्वी के मध्य (सम्पूर्ण विश्व में) सब अनश्वर जीवात्माओं एवं प्रकृति आदि में व्याप्त होकर वृद्धि व विकास करते हैं, उसे अविद्या की निद्रा से जाग्रत होने वाले ही पाते हैं। उस सर्वशक्तिमान् एवं सर्वव्यापक प्रभु के उपदेश धारण कर उसकी स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना करो।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – *योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज*	3
2.	सम्पादकीय	8
3.	श्रीमद्भागवत में योग परिचर्या – डॉ. विजय सिंह	11
4.	नवधा भक्ति योग का सोपान – डॉ. जे.पी. शर्मा	15
5.	श्री गुरु कृपा संस्मरण – श्री दुर्गा प्रसाद शर्मा	19
6.	कर दिया माला माल *(कविता)*	21
7.	माया का गुण कर्म विभाग क्या है ? – प्रो. ऋषिराम शर्मा	22
8.	सिंहासन	31
9.	मेरे गुरुदेव शहनशाहों के शहनशाह – जगदीश राए बंसल	33
10.	चरणों में अपने बिठाय रखना *(कविता)*	38
11.	चित्तरुपी रोग की चिकित्सा के उपाय – विजय शर्मा	39

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 160.00
द्विवार्षिक	: रु. 280.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 900.00

योग साधना का लक्ष्य

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

योग शास्त्र के ग्रन्थों में योग साधना का लक्ष्य बड़ा सूक्ष्म और गहरा बताया गया है। वहाँ योग-साधना का लक्ष्य 'पुरुष प्रकृति विवेक' है। **'सत्व-पुरुषयोशुद्धि साम्ये कैवल्यम्'** अर्थात् जहाँ पर प्रकृति पुरुष का शुद्धि साम्य हो जाये, पुरुष (आत्मा) अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाये और बुद्धि अपने कारण मूल प्रकृति में लय हो जाये, उसे शुद्धि साम्य कहते हैं। यही 'कैवल्य' कहलाता है। केवली भाव अर्थात् अकेलापन (परम एकांत)। मैंने बुद्धि और पुरुष का सम्बन्ध बताया था। आत्मा निर्मल ज्योति है, बुद्धि जड़ है आत्मा के सामने बुद्धि आई। आत्मा की चेतनता बुद्धि पर गड़ी और बुद्धि ने अपना रुप आत्मा को दिखा दिया। इससे आत्मा बुद्धि बोधात्मा अथवा प्रत्ययानुपश्य बन गया। उदाहरण देकर मैंने समझाने का प्रयत्न किया था, जैसे कि निर्मल ज्योति के सामने लाल शीशा आ जाये ज्योति लाल दिखाई देती है, पीला शीशा आ जाये ज्योति पीली दिखाई देती है। जड़ और चेतन की गाँठ । प्रत्ययानुपश्य को खत्म करना ही योग दर्शन का लक्ष्य है। निर्बीज समाधि के अन्दर द्रष्टा पुरुष अपने स्वरूप में रहा करता है **'तदा दृष्टुः स्वरुपेऽवस्थानम्'** निर्बीज समाधि में द्रष्टा अपने स्वरूप में अवस्थित होता है वह स्वरूप प्रतिष्ठा कैसे होती है ? इसका उत्तर जैसा कि चित्शक्ति का केवल्य में रहना। भगवान् ने गीता में आत्मा के स्वरुप को बताया है।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्ले द्योऽशोष्य एव चा।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।।

यह अच्छेद्य है, अर्थात् इसको काटा नहीं जा सकता अदाह्योऽयम् 'इसे जलाया नहीं जा सकता, अक्लेद्यो' इसे जल गीला नहीं कर सकता, अशोष्यः' इसे वायु सुखा नहीं सकती। यह आत्मा नित्य है, सर्वव्यापी है, एक जैसे रहने वाला है, अचल और सनातन है। समाधि के अतिरिक्त अर्थात् व्युत्थान काल में आत्मा **' वृत्ति सारुप्यमितरत्र'** के अनुसार वृत्ति सारुप्य' अवस्था को प्राप्त हो जाती है। **' सदृशम् चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञनवानपि'** ज्ञानी लोग भी अपने स्वभाव के अनुसार चेष्टायें किया करते हैं। सृष्टि में गुण विस्तार के कारण भिन्नता है। भगवान् राम का स्वभाव दूसरे प्रकार का है, भगवान कृष्ण का स्वभाव दूसरे प्रकार का है, भगवान शिव का स्वभाव कुछ और प्रकार का है। दुर्वासा ऋषि का स्वभाव कुछ और प्रकार का है- उनका क्रोधी होना प्रख्यात है। ये सब उनका आत्मिक विकार नहीं है, बुद्धि के धर्म हैं जिसमें वर और शाप दिया करते हैं। यह आत्मा का स्वरूप नहीं है। मैंने तुम्हे चित्त की पाँच प्रकार की

भूमियाँ कई बार समझाई हैं। इनमें सबसे पहले 'मूढ़ावस्था' वाले प्राणी होते हैं। ये तमोगुण प्रधान प्राणी होते हैं। मनुष्य में ऐसे प्राणी दूसरों को कष्ट देते हैं लड़ाई झगड़ा करते हैं, अथवा 'प्रमादालस्य एवं निद्रा में ही पड़े रहते हैं। दूसरे होते हैं 'क्षिप्तावस्था' के प्राणी ऐसे प्राणियों का चित्त पूर्णतया रजोगुण से व्याप्त रहता है। इनकी भी पारमार्थिक प्रकृति नहीं होती है। इन लोगों का ईश्वर में, सिद्धों में, लोक परलोक में विश्वास नहीं होता। **'यावत् जीवेत् सुखं जीवेत ऋणं कृत्वा घृतम् पिबेत्'** का इनका सिद्धान्त होता है। इन्द्रिय सुख में लगे रहते हैं अन्याय से बने अथवा किसी की हत्या करके भी धन मिलता हो तो उस में भी ऐसे लोग पीछे नहीं रहते। तीसरी भूमि के प्राणी 'विक्षिप्तावस्था' के होते हैं। **''क्षिप्ता विशिष्टम् विक्षिपत्म्''** क्षिप्तावस्था से जो श्रेष्ठ होते हैं वे विक्षिप्तावस्था वाले होते हैं। इनमें सतोगुण प्रधान रहता है, रजोगुणत्तमोगुण गौण रहा करते हैं। सतोगुण प्रधान होने से इस श्रेणी के प्राणी श्रद्धालु हुआ करते हैं। **'श्रद्धा चेतसः सम्प्रसादः'** अर्थात् चित्त की प्रसन्नता ही श्रद्धा है। श्रद्धा, योगी की माँ की तरह रक्षा करती है। श्रद्धा के उदय होने पर सतोगुण का विकास होगा। धीरे–धीरे उसमें दैवी सम्पत्ति आ जायेगी। भगवान् ने गीता में दैवी सम्पत्ति का फल बताया है **'दैवी सम्पद्धिमोक्षाय'** अर्थात् दैवी सम्पत्ति मुक्ति का कारण बन जाती है।

विक्षिप्तावस्था वाले मनुष्य में श्रद्धा होती है, इस कारण से परमार्थ में उनकी प्रवृत्ति स्वाभाविक होती है। चौथी श्रेणी के लोग **'एकाग्रावस्था'** वाले होते हैं। इनमें सतोगुण का पूरा–पूरा विकास हो जाता है। यहीं से योग प्रारम्भ होता है। इस से पहले की तीन अवस्थाओं में योग नहीं माना गया। इस अवस्था के उदय होने पर मनुष्य अन्तर्मुखी बन जाता है। रुहानी दृश्य सामने आते हैं। **'ईशाद्याः सकलाः देवाः दृश्यन्ते परमात्मनि'** अर्थात् उस परम तेज ईश्वर के अन्तर सभी देवी देवता दिखाई दिया करते हैं। इससे आगे **निरोधावस्था** आती है। इस से योगी की **निर्बीज समाधि** होती है। निर्बीज में माया का बीज समाप्त हो जाता है। तब योगी अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। मैंने तुम्हें पिछले व्याख्यानों में यह भली प्रकार से समझाया था कि योगी दो प्रकार के होते हैं। **'भव प्रत्यय '** वाले तथा दूसरे **'उपाय प्रत्यय'** वाले। **''भवप्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम्''** अर्थात् विदेह कोटि के देवता तथा प्रकृति लीन योगियों को भव प्रत्यय होता है। भव प्रत्यय वाले को जन्म से ही योग की प्रतीति होती है। भव प्रत्यय वाले यह समझते हैं कि हमें कैवल्य की प्राप्ति हो गई है। **'कैवल्य पदमिव अनुभवन्तः'** अर्थात् कैवल्य पद का अनुभव सा करते हैं। किन्तु उन्हें अभी कैवल्य प्राप्त नहीं होता क्योंकि तब तक उनके पास अनुभव करने वाला मन और बुद्धि रहते हैं। अतः चित्त अधिकार अर्थात् बीज वाला है। अधिकार में पुनरावर्तन हुआ करता है। विदेह देवता देह धर्म से आगे हो गये होते हैं ये ब्रह्मम लोक के जीव हुआ करते हैं। उनको तो संकल्प से ही ज्ञानेन्द्रियाँ हो जाती हैं। **'जिघ्रन् नासिका भवति'** यदि वे सूँघना चाहे तो नासिका अपने आप हो जाती है। पश्यन् चक्षुर्भवति अर्थात् देखना चाहें तो आँखें हो जाती हैं। **'स्पर्शन्त्यग् भवति'** यदि किसी को छूना चाहें तो त्वक् हो

जाती हैं अर्थात दूर दर्शन दूर श्रवण की योग्यता इनमें स्वाभाविक हुआ करती हैं। संकल्प से ही आँख, कान, नासिका आदि हो जाते हैं। मनुष्य की इन्द्रियों की शक्ति सीमित है। भगवान ने गीता में योगियों के लिये साधना क्रम अथवा कोर्स इस प्रकार बताया है।

इन्द्रियाणि पराण्याहुः इन्द्रियेभ्यो परंमनः।

मनसस्तु पराबुद्धिः यो बुद्धेः परतस्तु सः।।

अर्थात् पहले योगी इन्द्रियों का साक्षात्कार करे इसके पश्चात् मन का साक्षात्कार करे, फिर बुद्धि का साक्षात्कार करे और बुद्धि से परे उस आत्मा का साक्षात्कार करे। इन्द्रियाँ हमारी पूरी शक्ति वाली नहीं हैं। वस्तुतः तो इनका दायरा बहुत ज्यादा नहीं है। लेकिन, योग–साधना से ही इसके दायरे को विस्तृत बनाया जाता है। हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ कहाँ से उत्पन्न हुई, इसे जानो। देखो! घ्राणेन्द्रिय का सम्बन्ध गंध तन्मात्र से है। '**तत्र गन्धवती पृथ्वी**' अर्थात् पृथ्वी में गन्ध है। जब योगी योग साधना से घ्राणेन्द्रिय का साक्षात्कार करेगा तो जहाँ–जहाँ तक पृथ्वी का विस्तार है, जहाँ–जहाँ तक गन्ध तन्मात्र है वहाँ तक के सुगन्ध या दुर्गन्ध को योगी ग्रहण कर ले, तब समझ लेना चाहिये कि घ्राणेन्द्रिय का साक्षात्कार हो गया। साधारण मनुष्य जीभ से खट्टे–मीठे स्वाद का ही अनुभव करता है। किन्तु, साधना से जब हम रसनेन्द्रिय का साक्षात्कार करेंगे, तो जहाँ तक जल है, क्योंकि जीभ की उत्पत्ति जल से है, चाहे वह व्यक्त रूप में हो अथवा अव्यक्त रूप में, वहाँ तक के सारे रस का साक्षात्कार हो जायेगा। इसी प्रकार आँखों का सम्बन्ध अग्नि से है। रूप तन्मात्र अग्नि का कारण है। अग्नि जहाँ तक है वहाँ तक आँखों से देख सकता है। तुम यह जानते हो कि अग्नि सब जगह है, जल में भी अग्नि है पत्थर में दीवार में अग्नि सर्वत्र विद्यमान है। जब योगी नेत्रेन्द्रिय का साक्षात्कार कर लेता है तो उसे हजारों मील दूर की दिखाई दे जाती है अथवा जहाँ तक अग्नि का दायरा है वहाँ तक सभी कुछ देख लिया करता है। इसी प्रकार से त्वग् से दिव्य स्पर्श का अनुभव करता है। शब्द तन्मात्र कर्णेन्द्रिय का विषय है। आकाश जहाँ तक है ब्रह्माण्ड में जितने भी शब्द हैं, उन शब्दों को, कर्णेन्द्रिय के साक्षात्कार हो जाने पर सुन सकते हैं। मैं अपने एक गुरु भाई को जानता हूँ, जिन्होंने ऋषिकेश बैठे–बैठे ही बरसाने में हो रही घटना को देख लिया था और दण्ड भी दिया था। श्री प्रभु जी के चरणों में ऐसे अलौकिक चरित्र हम लोग दिन रात देख सकते थे। उनके कई बच्चों में भी ऊँची–ऊँची स्थिति वाले व सामर्थ्य वाले थे। अखिलात्मा भगवान ने गीता में युक्त योगी के लक्षण बताएँ हैं–

ज्ञान विज्ञान तृप्ता मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।

युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः।।

ज्ञान तृप्तात्मा वह होता है, जिसने प्रकृति के सारे विश्लेषणों को समझ कर प्रकृति पर हुकूमत प्राप्त कर ली हो और **विज्ञानतृप्तात्मा** वह होता है जिसने पूर्ण रूप से आत्म साक्षात्कार कर लिया हो। मिट्टी पत्थर सोना जिसके लिये समान है, वह युक्त योगी कहा गया है। आनन्द कन्द श्री प्रभु जी नैपाल हिमालय से आकर अपने ध्यानी बच्चों को, ध्यान में बैठाया करते थे।

उनका पहला काम था कि वे ध्यान में पहले भूमण्डल के सारे दृश्यों को दिखाया करते थे, पाँ भौतिक दृश्य–आग्नेय समुद्र आदि–आदि दिखाने के साथ–साथ गन्धर्व पितर–स्वर्गादि लोको को दिखाते थे। तत्पश्चात् उनमें से निकाल कर उसे आत्मदर्शन की ओर ले जाया करते थे। यह प्रभुजी का ध्यान अभ्यास करानेका क्रम था। हमारे भी ध्यानाभ्यासी बच्चे ऐसे हुये हैं। मैं **तुम्हें** रमण गिरी साधु के विषय में बताया करता हूँ। वह सन्यासी था। हमारे पास आकर **योग दीक्षा** ली। भगवान शंकर की आराधना पहले करता था। श्री प्रभु जी की कृपा से **ध्यान स्थिति** ऊँची चढ़ गई। वह भी लो लोकान्तर में जाया करता था। स्वर्ग में इन्द्र सभा में जाया करता था। हमारे आश्रम में आने जाने वाले साधकों में ही एक नत्थू राम काका थे। अच्छे **साधक** थे। एक बार राम लीला के दिनों में नत्थू राम ने उस महात्मा से कहा–चलो ! नागे ! तम्हें राम लीला दिखा कर लायें। महात्मा कहने लगा– काका जी ! तुम राम लीला देखने जाओ और मैं तुम्हें देखूँगा। तुम क्या–क्या करते हो और कहाँ जाते हो। ऐसा कह कर वह ध्यान में बैठ गया और सूक्ष्म शरीर से उसके साथ हो लिया। सारा दृश्य देखता रहा। जब नत्थू राम वापिस लौटे तो रमणी गिरी कहने लगा–काका जी बताउँ आश्रम से जाने के बाद तुम कहाँ–कहाँ गये और क्या–क्या किया। उन्होंने कहा बता ! हमने क्या–क्या किया ?' महात्मा ने कहा–सबसे पहले आश्रम से बाहर निकलने के बाद तुमने एक बीड़ी पी ! उससे आगे तुम्हें ठा. घमण्डी सिंह मिल गया, तुम उसके साथ–साथ बाजार गये। आपस में मजाक करते हुये जा रहे थे। उसके बाद एत्मादपुर पहुँच कर राम लीला देखने लगे। तुम्हें भीड़ के कारण खड़े होने को जगह नहीं मिल रही थी, इसलिये तुम ला. भगवान दास की दुकान पर चढ़ गये। राम लक्ष्मण की बारात निकल रही थी। इस में लक्ष्मण जी नीलवर्ण के थे और राम जी गौर–वर्ण के थे। इस तरह से राम की बारात देखने के बाद तुम फिर वापिस आये ! आश्रम से दूर डोरे (सीमा) के पास तुमने बीड़ी पीकर लघुशंका की और इस तरह से आश्रम वापिस आ रहे हो। नत्थू राम ने मान ली कि वास्तव में बात ज्यों की त्यों सत्य है। वह साधु स्वर्ग के दृश्यों को देखने लगा था। मैंने तुम्हें पहले भी बताया हुआ है कि जब योगी सम्प्रज्ञात की दूसरी श्रेणी में पहुँचता है, तब उसके मार्ग में देवता अन्तराय पैदा कर दिया करते हैं, तब उसे भ्रान्ति दर्शन होने लगता है। उसके साथ भी यही हुआ देवताओं ने उससे कहा कि तुम वृन्दावन में कुसुम सरोवर पर आ जाना, वहाँ तुम्हें एक देव कन्या मिलेगी।' वह चुपचाप आश्रम से बिना किसी को बताये वृन्दावन चला गया, वहाँ तीन दिन व तीन रात तक भूखा प्यासा पड़ा रहा। किन्तु कहीं देव कन्या नहीं आयी। हाँ वहीं की किसी लड़की से सम्पर्क को गया और भ्रष्ट हो गया। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि उत्थान तो होता है, किन्तु साधक सङ्गदोष से बचा रहे। **'निर्मानमोह जित सङ्गदोषाः'** यह भगवान का साधक के लिये संकेत है। यदि साधक जितेन्द्रिय नहीं है, तो शक्ति उसका साथ छोड़ देती है। शरीर में वीर्य ही ब्रह्म है। ब्रह्मचर्य का फल योग दर्शन में लिखा है कि **ब्रह्मचारी विनयेषु शक्तिमाधातुं समर्थो भवति** अर्थात् एक ब्रह्मचारी अपने शिष्यों में शक्ति पात कर सकता है। किन्तु जो इन्द्रियलोलुप हैं, वह शक्ति पात

नहीं कर सकता। अस्तु ! मैं तुम्हें भव प्रत्यय वाले योगियों के विषय में बता रही था। विदेह देवता औश्र प्रकृतिलीन वे होते हैं जो गन्धतन्मात्र में लय हो जाते हैं, रुप तन्मात्र में लय हो जाते हैं, रस तन्मात्र में लय हो जाये या बुद्धि के सात्विक महाभावों में लय हो जायें यह भी प्रकृतिलयता है। वह बुद्धिके धर्मो में लय हो जाता है। अपने इष्टदेव को सर्वत्र देखता है। अन्त में समझ लेता है। **'प्राप्तं प्रापणीयं, छिन्न :श्लिष्टपर्व: भव संक्रम:'** अर्थात् जो प्राप्त करनी चाहिये वह मैंने प्राप्त कर लिया है। पौड़ी दर पौड़ी स्थित इस जन्म चक्र को मैंने काट दिया है। किन्तु योगियों में एक विशेष बात यह होती है कि वह किसी से कुछ माँगते नहीं हैं। वे लोग अपने अन्दर शक्ति पैदा करते हैं, जिनसे वरदान व शक्ति लेते हैं वह भी योगी ही होते हैं। साधना करते–करते ये लोग भी शक्ति सम्पन्न हो जाते हैं। सिद्धता को प्राप्त हो जायेंगे। 'ईश्वर' को महासिद्ध कहा जाता है। वह अनादिसिद्ध हैं। क्लेश कर्म विपाक एंव आशय के चक्कर में जो कभी आया ही नहीं, उसे ईश्वर कहते हैं। दूसरे योगी भी साधना करते–करते क्लेश कर्म से छूट जाते हैं,निर्बीज समाधि तभी होगी जब वे क्लेश बंधन से पूर्ण रुप से टूट जायेंगे। योगी क्लेश बंधन से छूटने के लिये ही सारा पुरुषार्थ करता है। योग ही ऐसी विद्या है जिसके जान लेने पर सभी कुछ जाना जा सकता है।

'यस्मिन् ज्ञाते सर्वमिदं ज्ञातंभवति' ।।

सर्वज्ञता एवं सर्वव्यापकता योग से ही संभव है। इसलिये तुम सब अपने आप को योग ध्यान परायण बनाओ। जब तक शरीर में रजोगुण, रहेगा तब तक मृत्यु के समय प्राण का घर्षण होगा ही होगा। उस घर्षण के दु:ख में न कृष्ण चन्द्र याद आयेंगे, न कोई औश्र याद रहता है। एस समय प्राणें के घर्षण के समय शुभ चिन्तन नहीं होगा। अशुभ चिन्तन से 'अधो गच्छन्ति तामसा:' के अनुसार निम्न योनियों में प्राणी चला जाता है। किन्तु जो ध्यान योगी हैं उनमें सतोगुण की वृद्धिहो जाने के कारण, शुभ्र प्रकाश में शरीर छोड़त हैं, सद् गति को पाते हैं। इसलिये अपने को योग ध्यान परायण बनाओ। जो इस मार्ग में बढ़ेंगे, वे सर्व शक्तिमान उनकी अवश्य सहायता करेंगे। बार–बार आशीर्वाद।

सच्चिदानन्द रुपाय व्यापिने परमात्मने।
नत: श्री गुरुनाथाय ह्यविद्याग्रन्थिभेदिने।।

अर्थात् सच्चिदानन्द रुप व्यापक परमात्मा गुरु नाथ को मैं प्रणाम करता हूँ, क्योंकि वे ही अविद्या ग्रन्थि का भेदन करने वाले हैं।

गुरु पूर्णिमा का अमृत पर्व

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

हमारे देश में गुरु पूर्णिमा व व्यास पूर्णिमा – व्यास पूजा का पावन पर्व आषाढ़ माह की पूर्णिमा को बड़े धूम धाम व उल्लास से मनाया जाता है। ईश्वर प्रदत्तअद्भुत ज्ञान राशि वितरण गुरु परम्परा से अनादि काल से चला आ रहा है।

परमात्म ज्ञान के उस अथाह भण्डार से गुरुदेव द्वारा ही वह दिव्य ज्ञान संचारित होकर मानव धरातल तक पहुँचता है। जिससे सामान्य व्यक्ति भी इस ज्ञान का ग्राहक बन जाता है , बशर्ते व्यक्ति उस विद्या का उचित अधिकारी हो। गुरु मुख से ही परमात्म ज्ञान का श्रवण करके साधक अपने परमार्थ पथ पर चला करता है। गुरु मुख से प्राप्त विद्या ही फलवती होती है। गोविन्द से भी गुरु की महिमा अधिक बताई गई है। कहा है–

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागू पाँव।
बलिहारी गुरु आपनो गोविन्द दियो लखाय।।

गुरु कृपा से ही ईश्वर के दर्शन संभव होते हैं। इसलिए प्रथम पूजा गुरुदेव की ही पूजा की जाती है। तत्पश्चात् गोविन्द की। सभी महान सन्तों ने गुरु की महिमा गाई है। गुरु शब्द शब्दे (क्रयादिगण) तथा गृ निगरणे इन दो धातुओं का व्युत्पन्न होता है। **'गृहाति उपदिशदि** धर्मतिमति –गुरुः' जो योगधर्म का उपदेश करे वही गुरु है। **''यदा गीर्यत स्तूयते देवगन्धर्वा दिभिरिति गुरुः।''** अथवा देव गन्धर्वादि जिसकी स्तुति करते हैं वह गुरु है। जो गुरु वही पूर्ण है। गुरु वह है जो गरिमामय है। जिसमें गुरुत्वाकर्षण है जीवों को अपनी ओर खींच लेते हैं। जो सबसे बड़ा है सर्व समर्थ, व्यापक है, अनन्त है। पूर्णत्व गुरुत्व में ही है। उस पूर्ण सत्ता को ही शास्त्रों की भाषा में ब्रह्म कहते हैं। अर्थात् जो सर्वत्र व्याप्त है। ''सर्व समाप्नोषि ततोऽसि सर्व– (गीता) जो सबको अपने में समेट लेता है। इसलिए वह सर्वरूप है। उसे सर्वगत भी कहा जाता है। सर्वगत होने से ब्रह्मपूर्ण है। उपनिषद् में मंत्र आता है। ''पूर्णमिदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते।'' अर्थात् वह ब्रह्म पूर्ण है। यह जगत भी उससे व्याप्त हो के कारण पूर्ण कहा गया है। पूर्ण में से पूर्ण निकाल देने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है। यहाँ पर पूर्ण शब्द ब्रह्म की अभिव्यक्ति के लिए ही व्यवहृत हुआ है। श्रुति में 'रसो वै सः'' कहकर ब्रह्म को रसरूप माना है। रसों का मूल स्त्रोत चन्द्रमा है। पूर्ण चन्द्रमा में अमृत बनता है। वह अमृत ही रसरूप ब्रह्म है। गुरु में भी अमृत्व है। शिष्य को अमृत अमर बना देने की सामर्थ्य गुरुदेव में ही होती है। अन्य किसी में नहीं। गुरु पूर्ण समर्थ होता है चेतना का महास्त्रोत होता है। भगवान का अवतरण समय–समय पर इस संसार में होता चला आ रहा है। जब से मानवाकृति में आते हैं

तब वे अपने सदुपदेश से अपने दिव्य संस्पर्श से, लोकोत्तर चरित्र से जीव के कल्याण के लिए कृत संकल्प रहते हैं। इस रूप में भगवान का ऐसा मिलन जीव का आध्यात्मिक एवं भौतिक उभय मिलन होता है। उस समय वे गुरु शिष्य के रूप में ही होते हैं। उस क्षण जीव उस परम गुरु अपने इष्ट को पाकर यह भूल जाता है कि वह जन्मने और मरने वाला जीव है। वह इष्ट के रूप में तदाकार हुआ सिद्ध समर्थ गुरु अपने शिष्य के आत्मोत्थान के लिए मानव शक्ति का संचार करके शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक मत के शोधन के लिए भिन्न –भिन्न प्रकार की क्रियायें कराते रहते हैं।

भगवान कृष्ण गीता में मन और बुद्धि को इष्ट के सगुण रूप में समाहित कर देने की बात कहते हैं। भगवान की कृपा से जीव के मन और बुद्धि को अपने में विलय करा लेते हैं। जिससे जीव जीवत्व को त्याग कर ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है। उस परम भाग्यशाली जीव को भगवान जीव ब्रह्मैक्य का बोध करा देते हैं। यही भगवान के अवतरण का रहस्य एवं उद्देश्य है। भगवान के इसी गुरुत्व के आकर्षण के कारण ही वे जगद्गुरु कहलाते हैं। जीवों का इस प्रकार परम गुरु से मिलन सहसा संयोग वश नहीं होता है। जन्म जन्मान्तर की उस आत्मदेव से मिलने की चाह तद्भावना भक्ति होकर उस जन्म के दृढ़ संस्कार सम्बन्ध के स्थापित होने पर यह बात संभव हो जाती है। अन्यथा परात्पर शक्ति के पृथ्वी पर आविर्भाव होने पर भी उनके निकट सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति भी अपने कर्मों की मलीनता से भगवान के निन्दक ही बनकर जीवन बिता देते हैं। हम में से बहुत से भाग्यवान पुरुषों ने उस परम देव का श्री चन्द्रमोहन जी महाराज सद्गुरु रूप में दर्शन एवं पावन सानिध्य का परम लाभ प्राप्त किया है। उनके पावन चरण तल में बैठने पर जीव की समस्त कामनायें एवं वासनायें विलुप्त हो जाती थीं। परम शांति एवं आनन्द का साम्राज्य छा जाता था। प्राण स्वतः ही निश्चल हो जाता था। सभी उपस्थित शिष्य समुदाय का जिनके गुरुदेव ही एक मात्र परायण एवं जीवन के सूत्रधार हैं यह देखकर **'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणित्रणा इवा''** – यह वचन मानस पटल पर घूमने लगता था।

ऋषि कल्प गुरुदेव के देदीप्यमान मुखमण्डल को देखकर अध्यात्म की किरणें स्वतः शिष्यों के मानव तल को स्पर्श कर लिया करती थीं। गुकार अन्धकार का वाचक है और रुकार अन्धकार निवारक या प्रकाश देने वाला। जो अन्धकार अज्ञान को दूर कर शिष्य के हृदय में ज्ञान की ज्योति जला दे वही गुरु है– ऐसा गुरुगीता का वचन है। ''नास्ति तत्वं गुरोः परम''। गुरुदेव से आगे कोई तत्व नहीं यह भगवान सदाशिव का आदेश है। शिष्य का जीवन मृत्यु समर्थ गुरुदेव के हाथ में होता है। आवश्यकता है शिष्य के गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण की जो काफी दुःसाध्य है। योग से जीव और ब्रह्म का एकत्व होता है। गुरु भक्ति से गुरु शिष्य का एकत्व हो जाता है। जो शिष्य के जीवन का लक्ष्य रहा करता है। इसीलिए नित्य ही गुरु गीता के इस श्लोक का मनन करता हुआ कहता है –

नित्यं शुद्ध निराभासं निराकारं निरंजनम् ।
नित्यबोधंचिदानन्दं गुरु ब्रह्म नमाम्यहम् ।।

अर्थात् जो नित्य है, शुद्ध है आभास रहित, आकार रहित, माया रहित, नित्यबौध स्वरुप, चेतन और आनन्द रुप ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार गुरु की सेवा से चिन्तन से शिष्य गुरु की उपासना करता है वह भव बन्धन से मुक्त हो जाता है इसलिए गुरुदेव को भवभय विनाशक कहा गया है। गुरुदेव स्वयं मन्त्र स्वरुप होकर शिष्य के आध्यात्म शरीर में अनुप्रविष्ट ततश्चात् शिष्य को अपने नित्य चैतन्य स्वरूप का बोध कराते हैं। शास्त्रों का लेख है–

''गुरु पूजा विहिनानाम् न सिद्धि: स्याद्कदाचन''। जो गुरुदेव की पूजा आराधना नहीं करते तथा गुरुदेव को संतुष्ट नहीं रखते उन्हें कभी सिद्धि प्राप्त नहीं होती है। जो गुरुदेव के दिये मंत्र का जाप करता रहता है तथा गुरुपदिष्ट मार्ग से ध्यान करता है वही गुरुदेव का प्रिय भक्त होता है उसे ही अन्तर्ज्ञान प्राप्त होता है।

अत: शिष्य को गुरु निष्ठ रहना चाहिए। फिर उसके लिए भूतल में कुछ भी अप्राप्य नही रह जाता । इस बार गुरु –पूर्णिमा 3 जुलाई को सम्पन्न होना है। गुरु परम्परा को मानने वाले लोग इस अमृत पर्व को अत्यन्त धूम धाम से मनावें ताकि उन्हें भुक्ति–मुक्ति अर्थात् इस लोक के सुख – ऐश्वर्य तथा मुक्ति दोनों ही प्राप्त हो !

जय गुरुदेव !

मनोनिग्रह का अभ्यास

गीता की यह शिक्षा कि सच्चा सन्यास आसक्ति रहित कर्म में है, संसार का त्याग करने में नहीं, कोई ऐसी उपपत्ति नहीं है, जिसे संसार का त्याग करने के अनिच्छुक लोगों के समर्थन अथवा सफाई के लिए प्रस्तुत किया गया हो। वह म- ष्यों के जीवन को प्रत्यक्षत: गढ़ने के लिए आधार के रूप में प्रतिपादित की गई है, जिससे कि उनमें नि:स्वार्थता और अलिप्तता की आदत तथा स्फूर्ति विकसित हो। बत्तख पानी में तैरती है, परन्तु बाहर निकलने पर अपने शरीर का सब पानी झाड़ देती है। हमें उस' के समान संसार में रहना सीखना चाहिए। हमारे काम में दक्षता, सुधारता और कुशलता का अभाव न हो और फिर भी हम स्वार्थपूर्ण आसक्ति को विकसित न होने देने के लिए सतर्क रहें। अलिप्तता का यह भाव कायम रखने के लिए मनोनिग्रह का सतत् अभ्यास आवश्यक है।

श्रीमद् भागवत में योग परिचर्चा

-- डॉ. विजय सिंह

स्कन्ध तीन के अट्ठाइसवें अध्याय में सविस्तार अष्टाङ्गयोग (भगवान पातंजलि प्रणीत अष्टाङ्गयोग सदृश्य है) का वर्णन किया गया है। कपिल भगवान ने कहा– माताजी! अब मैं सबीज योग का लक्षण बताता हूँ, जिससे चित्त शुद्ध एवं प्रसन्न होकर परमात्मा के मार्ग में लग जाता है।

योगस्य लक्षणं वक्ष्ये सबीजस्य नृपात्मजे ।
मनो येनैव विधिना प्रसन्नं याति सत्पथम् ।। 1।।

(स्क.3 अ.28)

आत्मज्ञानियों के चरणों की पूजा करते हुये, पवित्र और परमित भोजन करना, मन वाणी और शरीर से किसी जीव को कष्ट न देना, सत्य बोलना, चोरी न करना, अपरिग्रही होना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, शुचिता अभ्यान्तरिक एवं ब्राह्य का दृढ़ता से पालन करना, स्वाध्यायशील होना, वाणी का संयम करना, उत्तम आसनों का अभ्यास करके स्थिरता पूर्वक बैठना, प्राणायाम द्वारा श्वास को जीतना, मूलाधार आदि किसी एक केन्द्र में मन को स्थिर करना, निरन्तर भगवत चरित्र का चिन्तन करते हुये चित्त को समाहित करके भगवान (परमात्मा) के ध्यान में लगाना ही योग है।

पहले आसन को जीते, फिर प्राणायाम का अभ्यास करे, पवित्र, एकान्त, निर्भय स्थान में सीधा बैठकर, पूरक, कुम्भक, रेचक द्वारा चित्त को स्थिर और निश्चल बनावे–

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य विजितासन आसनम्।
तस्मिन् स्वस्ति समासीन ऋजुकाय: समभ्यसेत्।। 8।।

प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकम्भकरेचकैः।
प्रतिकूलेन वा चित्तं यथा स्थिरमचञ्चलम्।। 9।।

योगाभ्यास द्वारा जब चित्त निर्मल हो जाये, मन एकाग्र होने लगे तब नासिकाग्र में दृष्टि लगाकर भगवान के साकार विग्रह का ध्यान करे।

यदा मनः स्वं विरजं योगेन सुसमाहितम् ।
काष्ठां भगवतो ध्यायेत्स्वनासाग्रावलोकनः ।।12।।

(स्क.3 अ.28)

आगे भगवान के साकार विग्रह का ललित विवरण विस्तार से किया गया है। कहा गया है कि योगी का चित्त जब भगवत विग्रह में स्थिति होने लगे, तब उनके समस्त अंगों में लगे अपने

चित्त को खींचकर विशेष रूप से एक – एक अंग में लगावे। भगवान के चरण कमलों का चिरकाल तक ध्यान करना चाहिये– **"ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविन्दम्।"**

इस प्रकार से अभ्यास करने पर सत्व वृद्धि से आनन्द, पुलक, आध्यात्मिक उत्कण्ठा का प्रवाह अन्दर से बाहर साधक को सराबोर कर देता है। तेल के समाप्त होने पर दीपशिखा अपने कारण तेर्जस –तत्व मे लीन हो जाती है। उसी प्रकार साधक का मन आश्रय, विषय, राग से रहित होकर ब्रह्माकार हो जाता है। अब गुण प्रवाह रूप देहात्म वृत्ति समाप्त होकर एक मात्र अखण्ड परमात्मा को ही सर्वत्र देखता है। योगाभ्यास से प्राप्त हुई चित्त की इस अविद्या रहित लय रूप निवृत्ति से सुख–दुख रहित ब्रह्म महिमा में स्थित, परमात्म तत्व को जानने वाला योगी सुख:दुख के भोग को अविद्याकृत अहंकार का परिणाम रूप देखता है–

आत्मानमत्र पुरुषोऽव्यवधानमेक–
मन्वीक्षते प्रतिनिवृत्तगुणप्रवाहः।।35।।

सोऽप्येतया चरमया मनसो निवृत्त्या
तस्मिन्महिम्न्यवसितः सुख दुःख ब्रह्मे।
हेतुत्वमप्यसति कर्तरि दुःखयोर्यत्।
स्वात्मन् विधत्त उपलब्ध परात्मकाष्ठः।।36।।

ब्रह्माकार वृत्ति प्राप्त सिद्धयोगियों की उपमा मदिरा मत्त पुरुष से किया गया है। ऐसे योगी को शरीर पर कपड़ा लिपटा है अथवा गिर गया उसे इसकी सुधि नहीं रहती क्योंकि वह अपने परमानन्द मय स्वरूप में स्थित है। वह अपने शरीर को प्रारब्धाधीन पाता है तथा उसे यह शरीर भी स्वप्न शरीर सा ही भासता है अर्थात देह–गेह में उसकी अहंता–ममता नहीं होता–

देहं च तं न चरमः स्थितमुत्थितं वा
सिद्धो विपश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम्।
दैवादुपेतमथ दैववशादपेतं
वासो यथा परिकृतं मदिरामदान्धः।।37।।

देहोऽपि दैववशगः खलु कर्मयावत्
स्वारम्भकं प्रतिसमीक्षत एव सासुः।
तं सप्रपञ्चमधिरूढ़समाधियोगः
स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः।।38।।

(स्कं. 3, अ. 28)

इस प्रकार प्रकृति, पुरुष और महत् तत्वादि आदि सांख्य–योग विषयों का विस्तार

पूर्वक ज्ञान भगवान कपिल ने अपनी माता को दिया। माता ने भक्ति के रहस्य तथा काल की महत्ता को जानने हेतु बोलीं– बुद्धि के कर्मासक्त रहने के कारण जीव चिरकाल से श्रमित हुआ अपार अंधकारमय संसार में सोया पड़ा है, उन्हें जगाने के लिये आप योग प्रकाशक सूर्य ही प्रकट हुये हैं। "त्वमाविरासी: किल योगभास्कर:"।

भगवान कपिल ने अष्टांग योग और भक्तियोग का वर्णन करते हुये कहते हैं कि इनमें से एक का भी साधन करने से जीव परमपुरुष भगवान को प्राप्त कर सकता है।

भक्ति योगश्च मया मानव्युदीरित:।
ययोरेकतरणैव पुरुष: पुरुषं व्रजेत ।।35।।

स्कं 3, अ. 29

आगे 'काल' की व्याख्या करते हुये कहते हैं– परमात्मा का अद्भुत प्रभाव सम्पन्न करने वाला तथा संसार के नानत्व का प्रकाशक 'काल' है। काल प्रकृति और पुरुष रूप में है तथा इनसे अलग भी है। काल का न कोई मित्र है न शत्रु है। भोगासक्त प्राणियों का संहारक है। इसी के भय से वायु चलता है, इसी के भय से सूर्य तपता है, इसी के भय से इन्द्र वर्षा करता है और इसी के भय से तारे चमकते हैं। अविनाशी काल स्वयं अनादि है। स्वयं अनन्त होकर दूसरों का अन्त करने वाला है।

अब तीसवें अध्याय में देहासक्त पुरुषों की अधोगति का वर्णन किया गया है। मूढ़ पुरुष जिसने मानव जीवन पाकर इन्द्रियों को वशवर्ती करने का प्रयास न कर जीवन भर कुटुम्ब–पोषण में ही लगा रहा, वह कष्ट से रोते हुये अपनों के बीच कठिन वेदना से अचेत होकर मृत्यु को प्राप्त होता है। आगे जीव को यमदूतों द्वारा भयावह यातना देते हुये जीव के यातना शरीर को भिन्न–भिन्न नरकों में ले जाकर बहुत कष्ट देते हैं। कई योनियों में जन्म लेकर कष्ट सहकर कर्मविपाक हेने पर मानव जन्म पुन: मिलता है।

इकतीसवें अध्याय में, मनुष्य योनि को प्राप्त जीव की गति का वर्णन हमारी प्रमादयुक्त आँखें खोलने वाला हैं। जिसे भगवान की प्रेरणा से पूर्वकर्मानुसार मानव शरीर लेना होता है, वह जीव पुरुष के **वीर्यकण** के द्वारा स्त्री के उदर में प्रवेश करता है। पुन: गर्भकाल के अन्दर विकास क्रम बताते हुये गर्भ कालीन कष्टों का विशद वर्णन किया गया है। गर्भ में पड़ा–पड़ा परमात्मा से संतप्त हृदय से बाहर निकालने हेतु प्रार्थना एवं प्रतिज्ञा करता है। इसी अध्याय में भगवान कपिल ने कहा है कि जो व्यक्ति योग के परम पद पर आरूढ़ होना चाहता हो अथवा जिसे मेरी उपासना से आत्मा–अनात्मा का ज्ञान हो गया है, उसे स्त्रियों का संग कभी नहीं करना चाहिये क्योंकि ऐसे योग प्रेमी के लिये वे नरक के खुले द्वार के सदृश हैं–

संग न कुर्यात्प्रमादासु जातु योगस्य पारं परमारुरुक्ष:।
मत्सेवया प्रतिलब्धात्मलाभो वदन्ति या निरयद्वार मस्य ।।39।।

यहाँ स्पष्ट किया गया है कि जीव का लिंग शरीर (कारण शरीर) जीव के साथ मोक्ष पर्यन्त रहता है। स्थूल शरीर तथा कारण शरीर का एकीकरण जन्म है। विलगाव मरण है। अतः मुमुक्ष पुरुष को मरणादि से भय, दीनता अथवा मोह नहीं होना चाहिये। ऐसे व्यक्ति को निःसंगता से संसार में आचरण करना चाहिये तथा इस मायामय संसार में योग वैराग्य युक्त सम्यक् ज्ञानमयी बुद्धि से शरीर को धरोहर समझते हुये उसके प्रति अनासक्त रहना चाहिये।

तस्मान्न कार्यः सन्त्रासो न कार्पण्यं न सम्भ्रमः।
बुद्ध्वा जीव गतिं धीरो मुक्त संगश्चरेदिह ।।47।।

सम्यग्दर्शनया बुद्ध्या योग वैराग्य युक्तया।
मायाविरचिते लोके चरेन्न्यस्य कलेवरम ।।98।।

(स्कं 3, अ.32)

बत्तिसवें अध्याय में मृत्यु के बाद जीव धूम मार्ग और अर्चिरादि मार्ग से किन-किन कर्मों के कारण जाता है उसका वर्णन करते हुये भगवान कपिल ने सामान्यतः भक्ति योग को सर्वसुलभ योग बताया है।

जिन लोगों में सकाम उपासना है, वे देवताओं पितरों की उपासना में श्रद्धा पूर्वक जुटे रहते हैं। ऐसे लोग मृत्यु पश्चात चन्द्रलोक में जाकर सुखोपभोग करते हैं पुण्य क्षीण होने पर पुनः मानव जन्म पाते हैं। वहीं अनासक्त, प्रशान्त, शुद्धचित्त, ममता रहित, अहंकार शून्य पुरुष अन्त में सूर्यमार्ग द्वारा सर्वव्यापी परमात्मा में लीन होते हैं। उनका आवागमन समाप्त हो जाता है।

आत्मा नित्य चेतन स्वरूप है और जो चेतन है वही आनन्द है। हमें चेतना तो प्रतीत होती है, किन्तु आनन्द प्रतीत नहीं होता क्योंकि उस चेतन आत्मा का स्वरूप आच्छादित हो रहा है यदि अज्ञान का आच्छादन हट जाय तो आनन्द प्रतीत होने लगेगा। आतमा परमात्मा का ही अंश है। परमात्मा आनन्दघन है। इसीलिए उसे सत् चित् आनन्द कहते हैं। सत् माने परमात्मा, चेतन माने ज्ञान स्वरूप बोध स्वरूप। परमात्मा के सिवा संसार में कोई वस्तु है ही नहीं। संसार का बिल्कुल अभाव करके संकल्प रहित होकर उस निर्गुण-निराकार परमात्मा का ध्यान करें।

नवधा भक्ति योग का सोपान

– डॉ. जे. पी. शर्मा, गुरु आशीष सदन, पावंता साहिब, हि.प्र.

जिस प्रकार किसी स्थान पर जाने के लिये हम विभिन्न मार्गो या साधनों का प्रयोग करते हैं उसी प्रकार जीव आत्मा को परमात्मा से मिलने के लिये विभिन्न साधनों का प्रयोग करना पड़ता है। मुख्यतः परमात्मा से मिलने के लिये भक्ति एक सामान्य मार्ग है। हमारे धर्म ग्रन्थों में विशेषतः नौ प्रकार की भक्ति का वर्णन मिलता है जिसे भक्त अपनाकर ईश्वर से मिल सकता है। इस नौ प्रकार की भक्ति को "नवधा भक्ति" कहा गया है। मकान की छत पर एक एक सीढ़ी चढ़कर पहुँचा जाता है, ठीक उसी तरह योग साधक भक्ति मार्ग की एक-एक सीढ़ी (सोपान) चढ़कर मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

"श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणम् पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।।"

अन्तःकरण की सुचिता तथा पवित्रता ही भक्ति का सर्वोत्तम फल होती है। ईश्वर के नामों का, श्रवण कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चना, वन्दना, दासता भाव, स्वयं को सखा मानकर तथा आत्म समर्पण भाव से पूजना नवधा भक्ति कहलाती है।

सर्वराग भय कोह नसाने,
भाव अनन्य सरन मम् आने।
ज्ञान रूप तपतापन जोई,
निहचै भाव रूप मम् सोई।।

गीता, 4 (10)

अतः भगवान श्री कृष्ण महानाज ने कहा है कि भय और क्रोध को त्याग कर मेरे आश्रित रहने वाले, ज्ञान रूपो तप से पवित्र हुये बहुत से भक्त मेरे स्वरूप को प्राप्त हो चुके हैं। उन सभी भक्तों वे नवधा भक्ति में से ही किसी मार्ग को चुना।

" नवधाभक्ति के सोपान "

1. श्रवण भक्ति:– श्रवण भक्ति में भगवान के भक्त श्रवण-परायण होकर भगवान की उपासना करते हैं। राजा परीक्षित अनुकरणीय है। श्रवण करने वाले भक्तों में राजा परीक्षित इसका मुख्य उदाहरण है। तक्षक नाग के डसने से अपनी मृत्यु को समीप जानकर राजा ने महात्मा शुकदेव जी से लगातार सात दिन भूख, प्यास, अन्नखाने की चिन्ता किये बिना श्रीमद्भागवत महा पुराण का श्रवण किया और मुक्ति प्राप्त की।

2. कीर्तन भक्ति :– कीर्तन करना भक्ति का एक सुगम साधन है। इष्ट, श्री गुरु देव

अथवा अपने प्रभु के नाम, रूप, गुणों तथा जीवन चरित्र का जोर–जोर से कीर्तन करना नवधा भक्ति का दूसरा सोपान है। कीर्तन करने से मन एकाग्रता प्राप्त करने लगता है। इधर–उधर के घोड़े नहीं दौड़ता। कीर्तन करने में एकाग्रता बनी रहती हैं। मन शान्त प्रसन्न तथा फंक्रित हीन लगता है। अकेले कीर्तन करना सर्वोत्तम होता है, क्यों कि अन्यों की तरफ उसका ध्यान नहीं जाता जबकि संकीर्तन में मनुष्य दूसरों का अवलोकन करता रहता है। अतः मन की एकाग्रता में प्रायः अवरोध आने लगता है। वीणा वादक श्री नारदमुनि जी, महात्मा शुकदेव जी सतत् कीर्तन करते रहते हैं।

"सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढ़व्रताः। "

भगवान के नाम, रूप, गुणों तथा चरित्र का लगातार स्मरण भगवान की प्राप्ति हेतु दृढ़निश्चयी होकर यत्न करने से प्राणी भव सागर से पार हो जाता है।

3. स्मरण भक्ति – नवधा भक्ति का तीसरा अंग स्मरण भक्ति होती है। नित्य प्रति अपने इष्ट देव अथवा ईश्वर के स्मरण से भगवान की प्राप्ति सहज होती है। प्रहलाद स्मरण–भक्ति का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। बार–बार अपने पिता हिरण्यकश्यप द्वारा सताये जाने पर भी प्रहलाद ईश्वर स्मरण नित्य करते रहे। अनेकों कष्टों को अपने शरीर पर सहते रहे। अपने भक्त प्रहलाद की रक्षार्थ स्वयं भगवान विष्णु नरसिंह रूपधारण कर खम्बे से प्रगट हो गये तथा हिरण्यकश्यप को मार गिराया। धन्य है ऐसे भक्त को! भगवान को स्वयं नर व हिंसक शेर रूप धारण करना पड़ा। सत्य ही है–

दुःख में सुमिरन सब करें,
सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे,
तो दुःख कभी न होय।।

अतः मनुष्य आत्म कल्याणार्थ हर पल प्रभु स्मरण करता रहे। इसी में मानव जाति की भलाई है।

4. पाद सेवन – पाद सेवन नवधा भक्ति का चौथा सोपान है। माँ भगवती लक्ष्मी इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। भगवान विष्णु की शेष शैया पर मां लक्ष्मी हर पल भगवान के चरणों का सेवन करती रहती हैं। श्री भरत जी महाराज ने भगवान राम की अनुपस्थिति में अयोध्या का शासन राम की चरण पादुकाओं के सेवन से चलाते रहे। हमारे पूर्वजों ने हमें शिक्षा दी है कि अपने बड़ों को झुककर चरण स्पर्श करने से बड़ों का आशीर्वाद फल के रूप में मिलता है। इस तरह पाद सेवक बड़ों की सानिध्यता प्राप्त करता है।

5. अर्चन भक्ति – वैसे तो हर प्राणी किसी न किसी रूप में भगवान की अर्चना करता रहता है। भगवान राम ने अपनी प्राप्ति के मार्ग के लिये भक्त शबरी को नवधा भक्ति का मार्ग

बतलाया था। शबरी के आश्रम में बेर के पेड़ लगे थे जिन पर फल लदे हुये थे। जब भगवान राम शबरी के आश्रम में पहुंचे तब भक्तिनी शबरी ने भगवान राम को चख-चख कर बेरो के फूल श्री राम को खिलाये थे। उसकी लालसा थी कि कहीं मेरे इष्ट श्री राम जी के मुँह में कोई खट्टा बेर न चला जाय। युधिष्ठर सदैव अपनी प्रसन्नता एवं पवित्रता के लिये भगवान की उपासना-अर्चना करते रहते थे। इसी वजह से वह सदैव मृदु सरल स्वभाव में बने होते थे।

6. **वन्दना भक्ति** :- वन्दना नवधा भक्ति का एक प्रमुख सोपान है। इसमें भगवान को श्री विग्रह, भगवान के अंशावतारों, आचार्य, ब्राह्मण, गुरुजन, माता-पिता, तथा अपने से बड़ों को पवित्र भाव से नमस्कार करना ही वन्दना कहा जाता है। इन सबको धर्मानुसार कर्त्तव्य मानकर करना ही वन्दन भक्ति कहलाता है।

7. **दास्य भक्ति** :- जब सेवक अपने को दास या गुलाम मानकर अपने प्रभु की या गुरुजनों की सेवा करता है उस भक्ति को दास्य भक्ति कहा जाता है। दास्य भक्ति नवधा भक्ति का ही प्रमुख अंग होती है। श्री हनुमान जी ने सदैव अपने इष्ट श्री राम जी की भक्ति दास्य भाव **से ही** की है। यही कारण था भगवान श्री राम ने हनुमान को अपने समान **पूज्यता का वर दिया**।

8. **सख्य भक्ति** :- जब भक्त अपने इष्ट देव या भगवान को अपना सखा मानकर भक्ति करता है उसे सख्य-भक्ति कहा जाता है। अर्जुन ने भगवान श्री कृष्णा जी महाराज को अपना प्रिय सखा मानकर अपने भूलवश हुये अपराधों को क्षमा करने की प्रार्थना की।

प्रभुगत ज्ञान प्रमादवस, नहिं प्रभाव तब जानि।
कहेउँ कृष्ण यादव सखे, मीत प्रीति अनुमानि।।
होत अहार विहार हँसि, सैया आसन यान।
भयउ जो मम् अपराध सोइ, छमहुं सकल भगवान।।

श्री मद्भगवत गीता 11 (41-42)

अर्जुन, भगवान श्री कृष्ण जी महाराज से क्षमा प्रार्थना कर रहा है- आपके इस प्रभाव को न जानते हुये, आप मेरे सखा हैं, ऐसा मानकर प्रेम से अथवा प्रमाद से भी मैंने " हे कृष्ण! हे यादव! हे सखे! इस प्रकार जो कुछ बिना सोचे समझे हटात कहा है और हे अच्युत! आप जो मेरे द्वारा विनोद के लिये विहार, शय्या, आसन और भोजनादि में अकेले अथवा उन सखाओं के सामने भी अपमानित किये गये हैं- वह सब अपराध अप्रमेयस्वरुप अर्थात अचिन्त्य प्रभाव वाले आपसे मैं क्षमा करवाता हूँ।

श्री मद्भगवत गीता, अ0 (41-42)

9. **आत्मनिवेदन** :- इस भक्ति में साधक अपने को अस्तित्वहीन मानकर स्वयं को ईश्वर के चरणों में अर्पित कर देते हैं। ऐसी भक्ति को तथा उसके समर्पण भाव को आत्म निवेदन भक्ति कहते हैं। ऐसी भक्ति नवधा भक्ति का अन्तिम अथवा नौवां सोपान है। राजा बलि इसका

सर्वोत्तम उदाहरण है। श्री वामन भगवान को तीन पग भूमि दान देने का संकल्प लेकर जब राजा बलि भगवान द्वारा केवल दो पग में ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड नाप लेने पर अपना वचन पूरा न कर पाए तब उन्होंने भगवान के तीसरे पग के लिये स्वयं को भगवान के सामने प्रस्तुत कर दिया। भगवान, बलि की भक्ति से अत्यन्त प्रसन्न हुये और उसे चिरंजीवी होने का वरदान दे दिया।

अतः भगवान की कृपा प्राप्ति के लिये नवधा भक्ति सरल एवं सर्वोत्तम मार्ग है। इसमें जीव अपने कल्याणार्थ भगवद् मार्ग से जुड़ जाता है। अनादि काल से भक्ति मार्ग सांख्य योग एवं निष्काम कर्म योग में भक्ति प्रदान कर मुक्ति का द्वार प्रशस्त करता है।

सूचना

सभी गुरुभक्तों को सूचित किया जाता है कि श्री सिद्धगुफा संवाई धाम में गुरु पूर्णिमा 12 जुलाई दिन शनिवार को धूमधाम से मनाया जा रहा है। इसके बाद श्रावण कृष्ण 2, सोमवार से रुद्र महा यज्ञ प्रारम्भ हो जायेगा जिसकी पूर्णाहुति 24 जुलाई गुरुवार 2014 को होगी। अतः सभी गुरुभाई ,बहिन उक्त कार्यक्रमों में अवश्य आयें।

प्रबन्धक

श्री गुरु कृपा संस्मरण

– श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा, रेलवे चार्जमैन रिटायर्ड, इटारसी, इन्दौर

घटना 1987 की है मेरी धर्म पत्नी स्व0 द्रोपदी देवी के बारे में उनको भोजन की नली में भोजन भोजन रूकता था पेट में अन्दर नहीं जाता था, पानी भी रूकता था। डॉक्टरों ने कैंसर का गले में बताया हम दोनों श्री सिद्धगुफा सवाईधाम सद्गुरुदेवजी के दर्शन को गए समस्या बताई श्री गुरुदेवजी से कहा कि डॉक्टर कैंसर बता रहे हैं व (बाम्बे) बंबई जाने को इलाज के लिये कहते हैं, तब गुरुदेवजी ने विनोद से हंसते कहा जा जा बम्बई जाएगी जा अवई चली जा मतलब मनाही था खैर आगे उन्होंने नेति व दुग्धनेती करने की आज्ञा दी और मंत्र जाप के साथ में शीतली प्राणायाम करने को कहा वैसा ही किया उससे कुछ ठीक लगने लगा नाक से दूध थोड़ा पीने लगी उसके बाद पूरा फायदा नहीं हुआ गुरुदेवजी को पत्र लिखा उन्होंने आज्ञा दी कि ऋषिकेश ले आओ नेती व ब्रहम दतुन करवा देंगे, लेकिन जाना नहीं हुआ जबकि छुट्टी व रेलवे का ट्रेन का पास सब कुछ फ्री था। फिर भी नहीं पहुँचे डॉक्टरों से इलाज करवाने की आज्ञा नहीं थी इसलिए मेरी पत्नी द्रौपदी देवी कहती थी कि महाराज जी आज्ञा देंगे तब ही डॉक्टरों से इलाज कराएगें जब तक नहीं, श्री गुरुदेवजी 1988 में मई या जून में भोपाल योगप्रचार करने पधारे थे। तब उन्होने आज्ञा दी कि मेरी आज्ञा है इलाज डॉक्टरो से कराओ (इसके बीच में श्री गुरुदेव जी 1987 नवम्बर 12 को दूसरा योग प्रचार के लिए पधारे थे) उस समय भी तकलीफ थी। इन्दौर चोइथ राम हॉस्पीटल में 25 जुलाई 1988 भर्ती करवा दिये कि भोजन की नस सिकुड़ गई है इसको ऑपरेशन से चौड़ी कर देंगे, ठीक हो जाएगी लेकिन भाग्य ठीक नहीं था ऑपरेशन से तवियत ज्यादा खराब हो गई दवाई वगैरह द्रौपदी देवी ने सब फेंकदी और घर आगए इन्दौर में डॉक्टर की सलाह से बंबई जाने की तैयारी कर रहे थे। जाने में कई बाधाएँ आई जो कि महाराज जी ने बंबई जाने का साफ मना किया था बंबई जाने को मेरी पत्नी बड़ा लड़का महेन्द्र शर्मा व मेरी छोटी बहन साथ में तीनों थे। इधर मैं इयरसी ड्युटी पर चला गया। इन्दोर पत्नी के साथ आते समय छुट्टी लेने मैं मेरे आफिस में गया रास्ते में इटारसी की घटना कौआ ने मेरे सिर पर पंख स्पर्श करके चला गया था। मैंने प्रभुजी का स्मरण किया शंकर भगवान के मंदिर में दर्शन किया कुछ नहीं हुआ। यह लोग बंबई निकलने के बाद मैं इटारासी आया, उसी रात्रि को करीब 6 बजे में निद्रा में था आवाज बड़ी जोर से आई सुनी कि श्री कृष्ण का ध्यान करो मैं स्वप्न में देख रहा हूँ, एक सफेद गौ (गाय) के ऊपर मैं प्रेम से हाथ फेर रहा हूँ।

इसी समय रास्ते में बंबई जो गये थे। दोहद गोधरा स्टेशन पर मेरे बड़े लड़के को मेरी पत्नी ने कहा मैं तो ठीक हूँ मुझे कुछ भी नहीं हुआ। महेन्द्र ने अपनी माँ के कान में कहा गुरुमंत्र जप करे उसी समय उनका प्राणान्त हो गया था। अब महेन्द्र क्या देखता है कि मेरी माताजी एक सफेद घोड़े से जुटा हुआ रथ आकाश मार्ग से आया उसमें माताजी बैठी हैं सिर पर मुकुट धारण कर रखा है, उनपर इतना प्रकाश था कि देख नहीं सकते थे। भगवान कृष्ण रथ चला रहे थे। माताजी का आशीर्वाद मुद्रा में दर्शन किया। तब यह दोनो बुआ भतीजे रोने लगे ट्रेन में लोग डब्बारेल का खाली करके दूर चले गए। इनकी हालत देख लोग कहने लगे – मत रोओ पुलिस पकड़ लेगी, ट्रेन के नीचे उतर जाओ। इन की समझ में नहीं आ रहा था क्या करें? चलती ट्रेन में से दोनों ने दोहद स्टेशन पर लाश को लेकर उतर गए। श्रावण माह अँधेरा रात्री 3 बजे सन्नाटा पानी भी बरस रहा था। महा घोर विपत्ति में श्री प्रभुजी का चमत्कार दया और मदद के लिए दूसरे मनुष्य के रूप में आना प्लेट फार्म पर पुलिस घूम रही थी लेकिन उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। लोग कहते तुम लोग रोना नहीं पुलिस है ध्यान रखो उसी समय प्लेट फार्म के बाहर से एक साधारण घर का व्यक्ति आया उसने इनके पास आकर कहा आप लोग इस बाई को (लाश को) हमारे पास में घर है वहाँ से आओ वहाँ आप लोग सुबह तक बैठो डरो मत घर में बॉड़ी को लेटा दिया उसने शीघ्र सुबह एक मेटाडोर सवारी गाड़ी करके उसमें तीनो को बैठाया लाश को लेकर करीब 16–18 घंटे आने में लगे लेकिन रास्ते में किसी ने भी टोका नहीं कि कहाँ जा रहे हो। शाम तक इन्दौर पहुँचे। हमको इटारसी रेलवे द्वारा सुबह 10 बजे खबर लगी इसके बाद महेन्द्र रात्रि को (बड़ा पुत्र) सोने के बाद वही स्वप्न फिर देखता है जो कि पहले दिख चुका हूँ। आकाश मार्ग से भगवान श्री कृष्ण रथ में माताजी को लेकर जा रहे हैं। यह बात मेरी बहन व महेन्द्र ने बताई। यही मैने घटना श्री गुरुदेव भगवान को पत्र में लिख कर भेजा उन्होंने इस घटना को सत्य बताया और पत्र द्वारा मुझे सूचित किया कि भगवान श्री कृष्ण की कृपा से अलभ लाभ को उसने प्राप्त किया। उसको सद्गति मिली जो कि सब को यह नहीं मिलता है। कुछ दिन बाद मैं महाराज जी के दर्शन को संवाई धाम आया और चरणों में रोने लगा। उन्होंने हाल चाल पूछकर तब मेरे से कहा 'क्यों रोते हो सद्गति मिली हैं, जैसे उन्होंने श्री मुल्कराज की पत्नी का उदाहरण दिया जो श्री प्रभु जी ने कृपा कर स्वर्ग से वापिस बुलाकर दर्शन करवाए।

जय गुरुदेव जी की !

कर दिया माला माल

– श्री जगदीश राए बंसल 'अधम'

लुटा दिया है भण्डार–संवाई वाले ने ।
कर दिया है माला–माल गुफा वाले ने ।।

भावना जिसकी जैसी मैय्या–वैसा ही फल पाता
भर दी सब की झोली प्यारे – जो इस दर पै आता
किया है मंगला चार – संवाई वाले ने।
कर दिया.............(1)

आश्रम की सेवा लेकर – जिसने कर्म कमाया है
सफल हुआ उसका जीवन – आगे भी उजाला है
किया जन्म – जन्म सुधार – संवाई वाले ने
कर दिया..............(2)

जिसने ध्यान लगाया है – प्रभु का दर्शन पाया है
उसका भाग्य सवाया है – अपना कुल चमकाया है
दे दिया आत्म ज्ञान – संवाई वाले ने।
कर दिया................(3)

किया है समर्पण जिसने – गुरु मुख तो हो ही गया
मन भाया जो दाता को – बन्धन उसका कट ही गया
किया अधम को निहाल – संवाई वाले ने।
कर दिया..............(4)

माया का गुणकर्म विभाग क्या है ?

– प्रो. ऋषिराम शर्मा

(शेष पिछले अंक में)

तमोगुण अज्ञानमूलक है जोकि प्रमाद, मोह, निद्रा तथा भ्रान्तिज्ञान से प्रेरित सभी जीवात्माओं को गुणबन्धन तथा कर्मबन्धन की दलदल में फँसा कर रखता है। उपरोक्त वर्णन में गुणों का पृथक–पृथक स्वभाव बताया गया है किन्तु यह तीनों गुण मिश्रित परिणाम देते हैं, क्योंकि प्रत्येक परिणाम इनके क्षणिक क्रमागत प्रभाव का फल है और क्रमपरिणाम इतना सूक्ष्म है कि मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों की पकड़ में नही आता और यही तो मायावी की अद्‌भुत माया है। इस गुणपरिणाम को मायिक भाव की संज्ञा दी गयी है और इस माया के अनन्त भाव हैं जैसा कि वेदशास्त्र का कथन है कि –

प्राणादिभिः अनन्तैश्च भावैरेतैः विनिर्मिता।
माया ह्येषा अस्य देवस्य यया सम्मोहितः स्वयम्।।

अर्थात् माया प्राणादि अनन्त भावों से निर्मित हुई है और इन्हीं जीवभावों में जीवात्माओं के स्वरूप में परमात्मा स्वयं मोहित हो गया है। यह कैसे सम्भव है इसका समाधान भी माया के स्वरूप में है। हमारा मन जीवभाव का कारण है और इसी को अधिष्ठान बनाकर जीवात्मा का प्रादुर्भाव हुआ, क्योंकि –

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषाननुसेवते।।
पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुंक्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसत्योनिजन्मसु।।
इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः।।

अर्थात् जीवात्मा तथा परमात्मा में जो भेद प्रतीत होता है वह सत्य नहीं है अपितु मायिक है। मन माया का प्रतीक अथवा प्रतिमूर्ति है। जब मन को अधिष्ठान बनाकर श्रोत्र, चक्षु, त्वचा, रसना तथा घ्राणेन्द्रिय द्वारा मायिक विषयों का भोग किया जाता है और इस तरह प्राकृतिक तत्वों के साथ तदाकारता करके आत्मा प्राकृतिक गुणों की उपभोक्ता बन जाती है तब वह जीवात्मा कहलाती है और जब वह मायिक रागद्वेषादि द्वन्द्वों पर विजय प्राप्त कर मन को साम्यस्थिति में निश्चल कर लेती है तब वह निर्दोष, निर्विकार परब्रह्म के परमात्मस्वरूप में स्थित हो जाती है और तब जीवात्मा तथा परमात्मा का कल्पित भेद भी समाप्त हो जाता है। इसी

को अद्वैतभाव कहा जाता है, द्वैतभाव तो मन की कल्पनामात्र था। उपनिषद् इस परम सत्य की पुष्टि करते हैं कि –

मनोदृश्यमिदं द्वेतं यत्किंचिद् सचराचरम्।
मनसो हि अमनीभावे अद्वैतभावं समुपद्यते।।

अर्थात् जितना चर तथा अचर जगत द्वैतसृष्टि के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है वह केवल मन के द्वारा कल्पित हुआ है, क्योंकि जब मन निर्विकल्प हो जाता है तब केवल सर्वसाक्षी परमात्मा का अद्वैतस्वरूप ही रहता है जैसा कि निरोधसमाधि में। लौकिक व्यवहार में यह देखा गया है कि सतोगुणी व्यक्ति विद्वान, तपस्वी तथा शक्तिसम्पन्न योगी होते हैं, रजोगुणी व्यक्ति कर्मठ, सामाजिक कार्यकर्ता तथा व्यवसायी होते हैं तथा तमोगुणी व्यक्ति क्रूर, पापात्मा, अत्याचारी तथा आसुरी स्वभाव वाले दुराचारी होते हैं। मृत्यु के पश्चात् भी ऐसे मनुष्यों की गति भी उनके गुणात्मक स्वभाव के अनुसार होती है। स्वयं भगवान कृष्ण ने इसकी पुष्टि की है कि –

यदा सत्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमान् लोकान् अमलान् प्रतिपद्यते।।
रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते।
तथा प्रलीनः तमसि मूढ़योनिषु जायते।।
कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्विकं निर्मलं फलम्।
रजसस्तु फलं दुःखं अज्ञानं तमसः फलम्।।
सत्वात् संजायते ज्ञानं रजसो लोभः एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च।।
ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्वस्थाः मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्थाः अधो गच्छन्ति तामसाः।।

अर्थात् जीवभाव से ग्रस्त जीवात्मा की गति तथा लोकव्यवहार उसके चित्त में प्रभावी होने वाली गुणवृत्तियों के अनुसार ही चलता है। मृत्यु के उपरान्त भी जैसा चित्त प्राण में लीन होता है उसी के अनुकूल उसकी लोकों तथा योनियों में गति होती है। यह माया का निश्चित गुणविधान है। जब सतोगुण से प्रभावी जीवात्मा मृत्यु को प्राप्त होती है तब उसकी गति पवित्र तथा उत्तम लोकों में होती है जैसे कि पुण्यात्मा जीव स्वर्गादि लोकों में तथा आत्मज्ञ ज्ञानी एवं योगी ब्रह्मलोक अथवा सिद्धलोक जैसे दिव्य लोकों को गमन करते हैं। इसी प्रकार रजोगुण से प्रभावी चित्तात्मायें मनुष्यलोक जैसे कर्मभूमि वाले लोकों को गमन करते हैं और तमोगुण से प्रभावी चित्तात्मायें मूढ़योनियों वाले नरकादि लोकों को गमन करते हैं। यह प्राणात्मा की स्वाभाविक क्रिया है। मनुष्ययोनि में पुण्यकर्मों में व्यस्त जीवात्माओं के चित्त में सतोगुण प्रभावी रहता है, रजोगुणी चित्त वाली जीवात्मायें प्रवृत्ति मार्ग में चलते हुए दुःख भोगती हैं और तमोगुणी

जीवात्मायें अज्ञान के अंधकार में भटकती रहती हैं। यह प्रकृति का निश्चित किया हुआ गुणविधान ही है कि सतोगुण की वृद्धि से ज्ञान प्राप्त होता है, रजोगुण की वृद्धि से लोभ की प्रवृत्ति होती है और तमोगुण की वृद्धि से प्रमाद, मोह तथा अज्ञान के संस्कारों की वृद्धि होती है। यदि सभी चौदह लोकों को उच्च, मध्य तथा निम्न श्रेणी में बाँट दिया जाये, तो सतोगुण की अधिकता वाली जीवात्मायें उच्च लोकों को गमन करती हैं, रजोगुण की अधिकता वाली जीवात्मायें मध्यलोकों को गमन करती हैं और तमोगुण की अधिकता वाली जीवात्मायें निम्नलोकों को गमन करती हैं। इस प्रकार गुणों के आधीन यह परमात्मा का मायातन्त्र अपनी स्वाभाविक एवं पूर्वनिर्धारित गति से चलता रहता है। माया का दूसरा महत्वपूर्ण मायातन्त्र है कर्मविधान। परमात्मा की माया के यह तीन गुण मनुष्यजीवन को किस–किस रूप में प्रभावित करते हैं और कैसी–कैसी चित्तवृत्तियों को जन्म देते हैं इस प्रक्रिया को समझना भी अत्यावश्यक है। यह त्रिगुणात्मिका माया पूर्ण समन्वय के साथ दो दिशाओं में कार्य करती है, एक दिशा में विश्व की सम्पूर्ण स्थूल तथा सूक्ष्म रचना आत्मा का अवलम्बन लेकर करती है और दूसरी दिशा में भ्रान्तिज्ञान के द्वारा अपनी मायिक रचना को सत्य दिखाती है। प्रथम दिशा में कार्य करने वाली माया की शक्ति को विक्षेपशक्ति कहा गया है और दूसरी दिशा में कार्य करने वाली को आवरणशक्ति कहा गया है। उपनिषद् में इसका प्रमाण मिलता है कि –

शक्तिद्वयं हि मायायाः विक्षेपावृत्तिरूपकम्,
विक्षेपशक्तिः लिंगादिं ब्रह्माण्डान्तं जगत् सृजेत्।
आवरणेत्यपरा शक्तिः या संसारस्य कारणम्।।

अर्थात् परमात्मा की त्रिगुणात्मिका योगमाया की दो विशेष शक्तियाँ हैं। प्रथम विक्षेपशक्ति है जिसके द्वारा माया प्राण, मन, बुद्धि, इन्द्रियादि सूक्ष्म तत्वों की गुणपरिणामों के माध्यम से रचना करती है और तन्मात्राओं के माध्यम से पंचभूतों तथा सम्पूर्ण स्थूल जगत का निर्माण करती है। दूसरी आवरणशक्ति है जो सत्य को छिपाकर भ्रान्तिज्ञान प्रकट करके कल्पित संसार को सत्य प्रदर्शित करती है। हमारी बुद्धि इस प्रक्रिया का वर्णन तो नहीं कर सकती, केवल कुछ सीमा तक अनुभव करती है। सृष्टि के विषय में शास्त्रों में सांकेतिक शब्दज्ञान मिलता है उसको श्रद्धा तथा विश्वास का आधार मानकर जब योगसाधक संयम की योग्यता प्राप्त कर समाधि की स्थितियों में सृष्टि के रहस्यों को जानने का संकल्प करता है तभी माया की इस प्रक्रिया के रहस्य अनुभूति में आते हैं। वेदशास्त्र इस कथन की पुष्टि करते हैं कि –

ते ध्यानयोगानुगते अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैः निगूढाम्।
सा कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तानि अधितिष्ठति एका।।

अर्थात् जब ध्यानयोगनिष्ठ महापुरुषों ने सृष्टि की रचना के रहस्यों को जानने का समाधि में संकल्प किया तो उन्होंने परमात्मा की उस योगमाया को देखा जो अपने ही गुणों से आच्छादित थी तथा उसी से अनन्त कारण–कार्यों की श्रृंखला का प्रादुर्भाव हुआ था। उसी में

कालतत्व तथा आत्मतत्व ओतप्रोत थे और वही अकेली शक्ति सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचयिता एवं सर्वाधिष्ठान थी। यह केवल ज्ञानचक्षु का विषय है न कि ज्ञानेन्द्रियों का। भगवान श्रीकृष्ण का भी यही कथन है कि –

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुंजानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा: नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुष:।।
यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्ति आत्मनि संस्थितम्।
यतन्तोऽपि अकृतात्मानो नैनं पश्यन्ति अचेतस:।।

अर्थात् परमात्मा अथवा उसकी योगमाया के रहस्यों को अज्ञानी नहीं समझ सकते कि किस प्रकार जीवात्मायें शरीर धारण करती हैं, किस प्रकार विषयभोगों में सुखदु:खों का अनुभव करती हैं, किस प्रकार गुणपरिणामों के अन्तर्गत सांसारिक व्यवहार करती हैं और किस प्रकार शरीर को त्यागकर अन्य लोकों तथा योनियों में आवागमन करती हैं। इन मायिक रहस्यों को केवल ज्ञानचक्षु से देखा तथा समझा जा सकता है। इसलिए प्रयासरत सिद्धयोगी ही परमात्मा और उसके ऐश्वर्य को अपने विशुद्ध चित्त में अनुभव कर सकते हैं। जिनका अन्त:करण शुद्ध नहीं हुआ है तथा जो गुणातीत अवस्था को प्राप्त कर कृतार्थ नहीं हुए हैं ऐसे योगसाधक भी प्रयासरत होते हुए भी परमात्मा के इन रहस्यों को नहीं जान सकते। परमात्मभाव में स्थित होकर परमात्मस्वरूप में रमण करने वाले आत्मज्ञ ही माया की गुणमयी लीला को जान तथा समझ सकते हैं। गुणों के आधीन जीवात्माओं के व्यवहार तथा कार्यकलाप से यह समझा जा सकता है कि कब कौन–सा गुण चित्त पर प्रभावी है। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं इसकी पहचान बतायी है कि –

सर्वद्वारेषु देहे अस्मिन् प्रकाश: उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्यात् विवृद्धं सत्वमित्युत।।
लोभ: प्रवृत्ति: आरम्भ: कर्मणामशम: स्पृहा।
रजस्य एतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ।।
अप्रकाशोऽपप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन।।

अर्थात् जब जीवात्मा के व्यवहार में ऐसा प्रतीत हो कि उसकी ज्ञानेन्द्रियों में विशेष प्रकाश तथा ज्ञान की वृद्धि हो गयी है तथा उसकी बुद्धि में ज्ञान की असाधारण योग्यता आ गयी है तब समझ लेना चाहिए कि उसके चित्त पर सतोगुण प्रभावी है। जब व्यवहार में लोभ, धनप्राप्ति की एषणा, अधिकाधिक सुखसामग्री एकत्र करने की प्रवृत्ति देखने को मिलती है और वह जीवात्मा इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नित्यप्रति कर्मों में व्यस्त रहता है तब समझ लेना चाहिए कि उसके चित्त पर रजोगुण प्रभावी है। जब जीवात्मा के सांसारिक व्यवहार में प्रमाद,

अज्ञान, मोहासक्ति तथा आसुरी प्रवृत्तियाँ एवं अहंकार दिखाई दे तब समझ लेना चाहिए कि उसके चित्त पर तमोगुण प्रभावी है। गुणों की प्रक्रिया के परिणामों के विषय में भगवान श्रीकृष्ण ने रहस्य खोले हैं और मैं संक्षेप में श्रद्धावान् साधकों को उनसे अवगत कराना चाहता हूँ। सृष्टि का मूल आधार तो क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ का संयोग है कि –

यावत्संजायते किंचित् सत्वं स्थावरजङ्गमम्।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् तद्विद्धि भरतर्षभ।।

अर्थात् हे भारतशिरोमणि अर्जुन! इस संसार में चेतन तथा अचेतन सभी पदार्थ एवं जीवों की उत्पत्ति तथा अस्तित्व क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ के संयोग के कारण ही सम्भव हुआ है। क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ का अस्तित्व एवं उन दोनों का संयोग परमात्मा की अविद्या माया का गुणात्मक विधान है। माया के इस विधान को गुणों के वशीभूत रहते हुए कोई नहीं समझ सकता। जीवों के दुःखों का एकमात्र कारण भी यही संयोग है, ऐसा महर्षि पतंजलि का कथन है कि –

''हेयं दुःखमनागतम्''
''द्रष्टृदृश्योः संयोगः हेयहेतुः''

अर्थात् मनुष्यजीवन का परम उद्देश्य भविष्य में प्राप्त होने वाले सभी दुःखों का नितान्त अभाव करना है और यह तभी सम्भव है जब इसके कारण का नाश हो सके। इसका एकमात्र कारण है दृष्टा (क्षेत्रज्ञ) तथा दृश्य (क्षेत्र) का संयोग। यह संयोग गुणात्मक है। अतः माया के तीन गुणों पर विजय प्राप्त करना ही इसका एकमात्र उपाय है, जैसा कि भगवान श्रीकृष्ण का कथन है कि –

गुणानेतानतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैः विमुक्तोऽमृतं अश्नुते।।

अर्थात् देहधारी क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) जब शरीररूपी क्षेत्र में कार्यरत माया के तीन गुणों पर विजय प्राप्त कर लेता है तभी वह जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधिरूप दुःखों से मुक्त होकर अमृतत्व प्राप्त करता है। आत्मा की क्षेत्रज्ञ की संज्ञा अविद्या द्वारा अध्यारोपित है और अविद्या गुणों द्वारा निर्मित अंधकार है जोकि ज्ञानचक्षु के प्रकाश से स्वतः नष्ट हो जाता है। अतः ज्ञानचक्षु की प्राप्ति केवल गुणातीत अवस्था में सम्भव होती है। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं इस गुणातीत अवस्था का वर्णन किया है कि –

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति।।
उदासीनवदासीनो गुणैः यो न विचाल्यते।
गुणाः वर्तन्ते इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते।।
समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकांचनः।

तुल्यप्रियाप्रियो धीरः तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः।।
मानापमानयोः तुल्यः तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः सः उच्यते।।

अर्थात् मायिक गुणों पर विजय प्राप्त करने वाला योगी जब गुणातीत हो जाता है तब संसार में उसका व्यवहार भी असाधारण हो जाता है। साधारण जीवात्माओं की बुद्धि गुणों के प्रभाव में निर्णय लेती है और मन के संकल्प–विकल्पों का अनुसरण करती है। किन्तु गुणातीत महापुरुष की बुद्धि पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि सतोगुण प्रकाश, ज्ञान तथा आनन्दानुभूति का प्रतीक है, रजोगुण कर्मासक्ति, कामक्रोध तथा लोभादि विकारों का प्रतीक है तथा तमोगुण अज्ञान, प्रमाद तथा मोहादि विकारों का प्रतीक है। इसलिए चित्त में इन गुणात्मक विकारों के दृश्यों में गुणातीत महापुरुष उदासीन तथा साक्षीमात्र रहता है तथा उनसे उसकी बुद्धि प्रभावित नहीं होती। उसके लिए मन में सुख दुःख की वृत्तियाँ, जरा तथा व्याधियों आदि की शारीरिक आपदायें, स्वर्णादि पदार्थों में लोभ के विकार तथा मन को प्रिय अथवा अप्रिय लगने वाली घटनायें बुद्धि को प्रभावित नहीं करती, क्योंकि वह इनके मिथ्यात्व को समझते हुए समत्वभाव में विचरण करता है। उसके लिए शत्रु तथा मित्र, मान तथा अपमान, प्रशंसा तथा निन्दादि चित्तवृत्तियाँ महत्वहीन हैं। वह कर्म का आरम्भ करता हुआ भी अकर्ता है, क्योंकि उसका कोई कर्तव्य शेष नहीं है –

यस्यात्मरतिरेव स्यात् आत्मतृप्तश्च मानव।
आत्मन्येव च सन्तुष्टः तस्य कार्यं न विद्यते।।
यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तदा याति परमां गतिम्।।
लीयते हि सुषुप्ते तन्निगृहीतं न लीयते।
तदेव निर्भयं ब्रह्म ज्ञानालोकं समन्ततः।।

अर्थात् गुणातीत की अवस्था में योगी का चित्त केवल आत्मप्रकाश से प्रकाशित रहता है। इस स्थिति में कोई गुणात्मिका चित्तवृत्ति चित्त में न होने से चित्त आत्मानन्द से ही अनुरक्त रहता है, उसे अपने उस चिदानन्दमय आत्मस्वरूप में ही पूर्ण सन्तुष्टि रहती है, अतः ऐसे गुणातीत योगी का कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता, उसके शरीर तथा सांसारिक धर्मों को स्वयं परमात्मा अपनी शासकीय शक्तियों के माध्यम से निर्वाह करते हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं अपनी इस जिम्मेदारी को स्वीकार किया है कि –

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासन्ते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।

अर्थात् जिनका चित्त प्रतिक्षण अनन्या भक्ति से युक्त होकर मेरे परमात्मस्वरूप में

रमण कर रहा है, ऐसे भक्तों के शारीरिक तथा सांसारिक कर्तव्यों का मैं निर्वाह करता हूँ। ऐसी गुणातीत तब प्राप्त होती है जब पूर्णरूपेण चित्तवृत्तियों की निरोधावस्था में मन के सहित सभी ज्ञानेन्द्रियाँ निश्चेष्ठ तथा निष्क्रिय हो जाती हैं और मन की अमनी अवस्था में बुद्धि में कोई भी चेष्टा अथवा अहंभाव नहीं रहता। इस स्थिति में मन तथा बुद्धि सुषुप्ति की भाँति लीन नहीं होती अपितु ज्ञानस्वरूप परम ब्रह्म के अनन्त ज्ञानालोक से दैदिप्यमान होकर ज्ञानचक्षु से युक्त हो जाते हैं। ऐसा महापुरुष तत्वज्ञानी कहलाता है जिसकी पहचान भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में स्वयं दिया है कि –

तत्ववित्तु: महाबाहो गुणकर्मविभागयो:।
गुणा गुणेषु वर्तन्ते इति मत्वा न सज्जते।।
नान्यं गुणेभ्य: कर्तारं यदा दृष्टा अनुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति।।
मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

अर्थात् हे महाबाहुयुक्त अर्जुन! तत्वज्ञानी महापुरुष ही माया के गुणविभाग तथा कर्मविभाग के सम्पूर्ण रहस्यों को जानता है। उसे यह निश्चित ज्ञान रहता है कि संसार की प्रत्येक रचना, उसका प्रत्येक पदार्थ तथा व्यवहार एवं विषयभोगादि सम्पूर्ण कार्यकलाप गुणों का परस्पर क्रमपरिणाममात्र है तथा मायाकल्पित है अत: वह उनमें तनिक भी लिप्त नहीं रहता। उसे यह प्रत्यक्ष अनुभूति है कि गुणों के अतिरिक्त अन्य कोई भी इस संसार में कर्म का कर्ता नहीं है और वह स्वयं मायातीत सच्चिदानन्दस्वरूप है जिसमें न तो गुणों का कोई स्थान है और न गुणों की कोई भूमिका। जो साधक अनन्या भक्ति से युक्त होकर योगसिद्धि प्राप्त कर लेते हैं, वही गुणातीत अवस्था को प्राप्त कर परम ब्रह्म के दिव्य नित्यानन्दस्वरूप के अधिकारी होते हैं। किन्तु इस परम कल्याणकारी स्थिति में प्रवेश करने में सबसे बड़ी बाधा है कर्मबन्धन जोकि माया का ही कर्मविभाग है। इसके मूल में भी त्रिगुणात्मिका माया है और इसका विस्तार भी गुणविकारों से होता है। अत: संक्षेप में इसकी झाँकी का वर्णन करेंगे।

माया का कर्मविभाग

इस संसाररूपी लीला को चलाने के लिए परमात्मा के सर्वाधिष्ठान स्वरूप से अविद्यामाया प्रकट हुई जिसने तीन गुणों के माध्यम से प्राणादि अनन्त भाव प्रकट किये। इन अनन्त भावों से दृश्यजगत तथा कर्मबन्धन के मायाजाल का निर्माण हुआ। यह मायाजाल क्षेत्र बन गया और स्वयं इस क्षेत्र में प्रवेश करके परमात्मा ने अपने सर्वव्यापी दो रूप बनाये, एक रूप में मायाधीन क्षेत्रज्ञ बना तथा दूसरे रूप में मायाधीश बनकर ईश्वर के स्वरूप में इस क्षेत्र का नियन्ता तथा शासक हो गया। वेदों ने इस रहस्य को प्रकट किया है कि –

लोकानां व्यवहारार्थं अविद्या इयं विनिर्मिता।
एषा विमोहनी इत्युक्ता द्वैताद्वैतस्वरूपिणी।।
प्राणादिभिः अनन्तैश्च भावैः एतैः विनिर्मिता।
माया ह्येषा अस्य देवस्य यया सम्मोहितः स्वयंम्।।
जीवं कल्पयते पूर्वं ततो भावान् प्रथग्विधान्।
बाह्यान् आध्यात्मिकांश्चैव यथा विद्या तथास्मृतिः।।
कल्पयते आत्मनात्मानं आत्मादेयः स्वमायया।
स एव बुध्यते भेदान् इति वेदान्तविनिश्चयः।।
विक्रोत्यपरान् भावान् अन्तश्चित्ते व्यवस्थितान्।
नियताश्च वहिश्चित्ते एवं संकल्पयते प्रभुः।।

अर्थात् लोकव्यवहार के लिए इस अविद्यामाया का निर्माण हुआ है। जैसे एक ही सूर्य से अनन्त जलाशयों तथा पारदर्शी पदार्थों में अनन्त सूर्यों के रूप दिखाई देते हैं वैसे ही इस अविद्या ने अनन्त जीवों की सृष्टि करके भ्रान्तिमूलक मोहजाल का निर्माण कर दिया है। जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि से उसके तेज से युक्त असंख्य ज्वालायें प्रस्फुटित हो जाती हैं उसी प्रकार सर्वव्यापी परमात्मा से आत्मतेज से युक्त अनन्त प्राणशरीर प्रकट हो गये। परमात्मा स्वयं उन अनन्त प्राणशरीरों में आत्मतेज के रूप में इस तरह गुप्त तथा मोहित हो गया जिस तरह दूध में घी गुप्त रहता है। यह सम्पूर्ण विश्व परमात्मा की इसी मायावी रचना का स्वरूप है जिसकी कल्पना पूर्व में ही चावल में भातन्याय की भाँति कर ली गयी थी तथा परमात्मा ने उसमें अविद्यामूलक तथा विद्यामूलक अनन्त भावों का प्रवेश करा कर अविद्या के अनुकूल वहिर्मुखी तथा विद्या के अनुकूल आध्यात्मिक स्मृतिसंस्कारों का विधान बना दिया। स्वयं भी सर्वाधिष्ठान, सर्वसाक्षी ज्ञानात्मा तथा शक्तिस्वरूप चिदात्मा के रूप में अनन्त प्राणशरीरों, मनोमय तथा बुद्धिमय स्वरूपों में अपनी माया का नियन्ता हो गया जैसा कि वेदवाणी का कथन है कि –

मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्।
एतस्यैव अवयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्।।

अर्थात् सम्पूर्ण प्रकृति परमात्मा की माया है और स्वयं परमात्मा मायाधीश है। सम्पूर्ण जगत मायावी की माया से ही व्याप्त जानना चाहिए। यह उसी मायावी का संकल्पमात्र है कि जैसे स्वप्न में माया द्वारा अन्तश्चित्त के विक्रित भाव स्वप्न संसार के दृश्य बन जाते हैं वैसे ही प्रारब्धकर्मों के स्वभावज भाव जागृतसंसार के दृश्य बन जाते हैं। जीवात्माओं के लिए यही कर्मबन्धन है जिसका संचालन माया का कर्मविभाग करता है। अपनी बुद्धि से तो कर्मविभाग के कार्यक्रम तथा कार्यप्रणाली को समझा नहीं जा सकता, इसलिए परमात्मा के संदेश को आधार बनाकर इसकी झाँकी दिखायेंगे। कर्मविधान का सूत्रधार क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ का संयोग है। यह

संयोग भी मायाकृत है और इसके दो उद्देश्य हैं। एक तो संसार का संचालन और दूसरा पुरुष तथा प्रकृति के स्वरूप तथा रहस्यों को जानना। इसलिए कर्मविधान के भी यही दो प्रमुख उद्देश्य हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं यह संकेत दिया है कि –

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्तु ईष्टकामधुक्।।
यज्ञात् भवति पर्जन्यः यज्ञः कर्मसमुद्भवः।
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्।।
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।।
काँक्षतः कर्मणां सिद्धिं यजन्तः ईह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा।।
देवान् भावयतानेन ते देवाः भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।।
ईष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तान् अप्रदायैभ्योः यो भुंक्ते तेन एव सः।।
यतः प्रवृत्तिः भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।
एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयति ईह यः।
अघायुः इन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति।।
यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर।।
तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो हि आचरन् कर्म परं आप्नोति पूरुषः।।

अर्थात् सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने जब सृष्टि की रचना की तब उसी रचना के साथ–साथ यज्ञों का भी विधान किया। स्वयं ब्रह्मा ने अग्नितत्व के रूप में यज्ञों में प्रवेश करके अपने दिव्य प्रकाशतत्व के द्वारा अपने सर्वव्यापी आधार कूटस्थ अक्षर ब्रह्म के रूप में परमात्मा से सीधा सम्बन्ध स्थापित किया ताकि यज्ञों के माध्यम से ईश्वर के योगैश्वर्य द्वारा जीवात्माओं की ह्रदयगत कामनायें पूर्ण होती रहें। ब्रह्मा ने विशेषशक्ति से युक्त इच्छारूप देवयोनियों को प्रकट किया जिनका यज्ञों की आहूतियों से शक्तिवर्धन होता है और वह अपनी दिव्य शक्तियों से सांसारिक प्राणियों को शक्ति तथा विषयभोग के साधन उपलब्ध कराते हैं।

(शेष अगले अंक में)

सिंहासन

गुल्फौ च वृषणस्याधः,
सीवन्याः पार्श्वयोः क्षिपेत्।
दक्षिणे सव्य गुल्फं च,
दक्ष गुल्फं तु सव्य के।
हस्तौ तु जान्वोः संस्थाप्य,
स्वांगुली सम्प्रसार्य च।
व्यात्त वक्त्रो निरीक्षेत,
नासाग्रे सु समाहितः।
सिंहासनं भवेदेतत्पूजितं योगिपुङ्गवै,
बन्ध त्रयं संस्थानं कुरुते–चासनोत्तम्।।

विधि– पहले सीधे स्वभाव बैठकर अपने पैरों के दोनों गुल्फों का (अर्थात टखने को) सीवनी के दायें और बायें लगाये, दाहिने भाग में बायें टखने (एड़ी गाँठ) को एवं बायें भाग में दाहिने टखने को लगायें। इसके बाद दोनों हाथों की अंगुलियों को खूब फैलाकर दृढ़ता के साथ अपने दोनों घुटनों पर जमा कर रखें, उसके बाद सिंह के समान मुख फैलाकर लपलपाती हुई जीभ को निकाल कर भ्रमध्य को देखें, इसी का नाम सिंहासन है।

समय– साधारण पूर्वोक्त नियमानुसार शनैःशनैः अभ्यास को बढ़ायें।

लाभ– इस आसन में सिंह के बल की धारणा करने से दिल की शक्ति बढ़ती है। जालन्धर बन्ध के फलस्वरुप मन की एकाग्रता स्वाभाविक है। उड्डियान बन्ध के फलस्वरुप जठराग्नि का बढ़ना, भूख अधिक लगना

स्वाभाविक है। उड्डियान बन्ध के फलस्वरुप जठराग्नि का बढ़ना, भूख अधिक लगना स्वाभाविक है। उसके साथ-साथ यह पेट सम्बन्धी सभी प्रकार के वात रोगों का नाशक है। मूलबन्ध में अपान के उर्ध्वाकर्षण से और ऊपर से उड्डियान एवं जालन्धर बन्ध के लगने से प्राणापान गति रोधन होकर कुण्डलनी का बोधक है। सब प्रकार आरोग्यप्रद एवं शक्ति वर्धक है।

शोक संवेदना

• बड़े दु:ख के साथ सूचित कर रहे हैं कि हमारे वरिष्ठ गुरु भाई धनाना हरियाणा निवासी श्री पुष्कर दत्त शर्मा जी का वैशाख पूर्णिमा 14 मई को रोहतक में देहावसान हो गया है। वे लगभग 80 वर्ष के थे। समय-समय पर आश्रम में रहकर श्री गुरुदेव का भोजन बनाने का इन्हें सौभाग्य मिला था। इनके पुत्र श्री ऋषिराम शास्त्री हैं। इस दु:ख की वेला में आश्रम वासी व सिद्धयोग परिवार हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है। प्रभु जी दु:खी बच्चों को शान्ति प्रदान करें।

• बड़े दु:ख की बात है कि गुरुदेव के लाड़ले बच्चे देहरादून निवासी डॉ. जगदीश प्रसाद मालगुड़ी का 17 जून को देहावसान देहरादून में हो गया है। वे सिर में ट्यूमर रोग से विगत कई वर्षों से पीड़ित थे। श्री प्रभु जी उन्हें अपने चरणों में स्थान दें तथा दु:खी परिवारिजनों को इस दु:ख को सहन करने की शक्ति दें। सिद्धयोग परिवार इस दु:खद वेला में अपनी हार्दिक शोक संवेदना प्रकट करता है।

• एक पुराने गुरुभाई बेनीपुर निवासी सुरेन्द्र सिंह का गत 23 मई को देहावसान हो गया है। वे 78 वर्ष के थे। श्री प्रभु जी उन्हें अपने चरणों में स्थान दें तथा दु:खी परिवारिजनों को इस दु:ख को सहन करने की शक्ति दें। इस दु:ख की वेला में सिद्धयोग परिवार (आश्रम) अपनी हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

• मिर्जापुर निवासी मनोहर मास्टर का निधन 31 मई को हो गया है। श्री प्रभु जी अपने बच्चे को चरण शरण दें व आत्मा को शान्ति प्रदान करें। दु:खी परिवारिजनों को दु:ख सहने की क्षमता दें।

— सम्पादक सिद्धयोग

मेरे गुरुदेव शहनशाहों के शहनशाह

– जगदीश राए बंसल 'अधम', नई दिल्ली

हमारे आपके और प्राणी मात्र के सद् गुरु देव योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्र मोहन जी महाराज को अपनी लीलावसान किए लगभग चौबीस वर्ष हो चुके हैं। परन्तु उनकी अहैतुकी कृपाएँ आज भी उसी प्रकार घटित हो रही हैं, जैसे कि उनके स्थूल रूप के रहते हुआ करती थी। अपने श्री सिद्धयोग आश्रम से सम्बन्धित उच्च श्रेणी के साधकों के ये अनुभव अक्षरत: सत्य हैं कि अपने सद्गुरु देव भगवान सिद्धों के सरदार योगीराज श्री चन्द्र मोहन जी महाराज अपने हर बच्चों की, हर समय, हर जगह, कोई भी विपत्ती अथवा संकट आने पर, चाहे हम उस समय गुरु देव को याद कर पाएँ अथवा ना कर पाएँ, मगर मात्र उनकी कृपा से समस्त संकट दूर हो जाया करते हैं।

भाग्य विधाता आराध्य देव गुरु श्री चन्द्र मोहन जी महाराज अपने लाड़लों के कष्ट निवारण हेतु किस वेश–भूषा में, किस अनुपम विधि से कष्ट निवारण कर जाया करते हैं ? ऐसी लीलाओं को जानना किसी भी माई के लाल की बुद्धि का विषय नहीं है और न ही भविष्य में ऐसी कोई सम्भावना है। हम अपनी मासिक सिद्धयोग पत्रिका में प्रकाशित गुरु कृपाओं को पढ़ते ही हैं कि लीला धारी, अनाथ नाथ, चराचर के स्वामी, गुरु देव भगवान कभी सर्जन बन कर, कभी न्यायधीश बन कर, कभी फकीर बन कर, कभी रेलवे गार्ड बनकर, कभी दरोगा और कभी–कभी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपों में पधार कर, तरह तरह की लीलाएँ कर जाते हैं। इतना ही नहीं अपने से रूठे अपनों को सन्मार्ग पर लाने के लिए अन्तर्यामी जी के तौर तरीके अजब निराले ही हुआ करते हैं। किसी ने कहा है :–

माली चुनता फूल जिस तरह – फूलों भरी कतार से।
निज बच्चों को आप खींचते – भीड़ भरे संसार से।।

इसी प्रकार गुरु कृपाओं पर चर्चाओं के चलते, होलिका दहन के पवित्र त्यौहार दिनांक सोलह मार्च 2014 को अपने संवाई धाम आश्रम में श्री सिद्ध योगाधिपति गुरु देव के एक लाड़ले परिवार के सदस्य श्री अशोक कुमार अग्रवाल उर्फ झब्बू ने बतलाया कि गुरु देव भगवान की कृपाओं का अन्त तो कोई है नहीं मगर एक दो प्रसंग मुझे याद आ रहे हैं। आदरणीय गुरु भाई झब्बू ने बताया कि मुझे सन् 1988 के योग शिविर धनवाद में दीक्षा लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अपनी बात से पहले धनवाद के विषय में बता दूं कि उन दिनों काल चक्र, युग चक्र, और जग चक्र को एक साथ चलाने वाले गुरु देव भगवान इस अवनि मण्डल पर अवतरित अपनी अहैतु की कृपाऐं दोनों हाथों से लुटा रहे थे। धनवाद में सिद्धों के सम्राट परब्रह्म विश्वनाथ जी के शिविर में साधकों का जो उत्साह, साधकों की संख्या, साधकों का प्यार उमड़ता था, शायद ही

कहीं देखने को मिले। धनवाद और झरीया जो कोलियारीयों की आतंक खान कहे जाते हैं, वहीं डाकूओं का आतंक भी भयावह है। एक बार अपने सर्व समर्थ, सिद्धों के सरदार गुरु देव ने अपने एक कृपा पात्र एवं हमारे आदरणीय गुरु भाई श्री रामधन दास की डाकुओं से प्राण रक्षा की थी। हुआ यू कि 'हि मांगी पगार के चक्कर में डाकुओं के एक गिरोह ने धनवाद और झरीया के मध्य बसे पुष्पुन्डा में भाई जी के मकान को रात्रि के समय घेर कर आग लगा दी। वातावरण इतना भयावह था कि मकान में किसी के भी जिन्दा बचने की आशा रखना, समय को बर बाद करना था। अतः इस किंकर्तव्य विमूढ़ावस्था में आदरणीय भाई जी ने, प्रातः स्मरणीय गुरु देव अनन्त विभूषित योग योगेश्वर श्री चन्द्र मोहन जी महाराज के श्री चरणों में मर्मज्ञ एवं ओजस्वी वाणी से गुहार लगाई कि..........तथा यह भी कहा कि :–

गुरु जी हमारे प्राण बचा दे
हमारी मौत को दूर भगा दे
कितनों को तूने जीवन दान दिया है
घनेरों को तूने अभय किया है
डाकू दल को दूर भगा दे
लगी आग को शान्त करा दे
भूल चूक म्हारी माफ करा दे
गुरु जी आज प्राण बचा दे।।

उधर आग लगाने के पश्चात् डाकू दरवाजे और खिड़कियों पर बम गोले दागने लगे। मगर चमत्कार यह हुआ कि उक्त गोले दिवार से टकरा कर वापिस डाकू दल पर गिरने लगे। दस बीस नहीं, चालिसों गोले इस प्रकार डाकुओं पर गिरे तो डर के मारे डाकू अपनी जान बचाने को भाग खड़े हुए। अग्नि भी शान्त हो गई। तभी तो कहते हैं :–

(1). जहाँ इष्ट होता है, वहाँ अनिष्ट नहीं होता, और

(2). सुन कर आर्त पुकार गुरु जी आते हैं।
करते हैं शक्ति संचार प्राण बचाते हैं।।

इस प्रसंग का पटाक्षेप यहीं नहीं होता। भाग्य विधाता, दया सागर आशुतोष गुरु देव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज ने आदरणीय गुरु भाई श्री रामधन दास की दशा और दिशा ही बदल दी। इस प्रसंग की उंचाई बहुत प्रभावी है अतः अब मैं अपनी बात को ही साझ कर इति श्री करता हूँ।

मेरी पूजनीया मामी श्री को अखिल ब्रह्माण्ड नायक जगत नियन्ता अखण्ड ज्योति महा प्रभु दादा जी श्री राम लाल महाराज द्वारा अनेक शक्तियाँ/आशीर्वाद प्राप्त हैं। उनकी प्रेरणा से हमारे परिवार का प्रातः स्मरणीय योग योगेश्वर गुरु श्री चन्द्र मोहन जी महाराज की चरण शरण

में आना-जाना बराबर रहा है। अत: मैं बचपन से ही अनादि सिद्ध गुरुदेव भगवान के दर्शन-लाड़-प्यार एवं आशीर्वाद में पला-बढ़ा हुआ हूँ। मेरा जेष्ठ भ्राता श्री कैलाश चन्द तो संकट विमोचन तारण हार गुरुदेव जी के प्राय: प्रत्येक त्यौहार एवं शिविर में अपनी सेवाएँ अर्पित करना अनिवार्य समझता था। हर बार की तरह, इस बार वह अकारण दयालु जी द्वारा श्री प्रयाग राज में लगाए गए योग शिविर में गया हुआ था। वहाँ पर अन्तर्यामी, पल पल रक्षक गुरु जी ने उसको स्पष्ट कहा कि लल्ला कैलाश तू अन्दर से बीमार है, मेरे पास रह जा, तुझे दो माह में चमकते सितारों के मध्य चन्द्रमा की तरह पूर्णतया स्वस्थ्य बना कर भेज दूंगा। परन्तु कबीर जी एक स्थान पर लिखते हैं कि :-

समझाये समझे नहीं – पर के हाथ विकाय।
मैं खीचत हूँ आपको – तू चला जम पुर जाय।।

इसी को कहते हैं– **विनाश काले विपरीत बुद्धि ।।** परिणामत: मेरा भाई अपनी मन मानी से गुरु आज्ञा का उलंघन करके, बिना गुरु आज्ञा लिए, उसी दिन गुरुवार को ही प्राण दाता के योग शिविर से अपने घर करकन्धा बाजार (धनवाद) लौट आया। वैसे बता दूं कि मेरा भाई गुरु आज्ञा के उलंघन का पक्ष धर कदापि नहीं रहा मगर गीता कहती है कि.......गहना कर्मणो गति।। वास्तव में मेरे जेष्ठ भ्राताजी का लीवर खराब था। हमने उच्च स्तर पर इलाज कराया लेकिन मर्ज बढ़ता ही गया। निराशा की इस घन घोर घटा में घर वालों पर शक की फूहार पड़ने लगी कि इस पर कोई जादू टोना हुआ है अन्यथा इतने निपुण चिकित्सकों का परिश्रम अवश्य रंग लाता।

कितने नर नारी घर में – सहमें गम में अधीर।
जान सके ना भेद कोई – कैसे उतरी यें तकदीर।।

अब हम जादू-टोने के उपाय में खो गए। इसी मध्य मेरी एक आदरणीया दीदी जी ने बतलाया कि मेरी ससुराल कतरास बाजार (झारखण्ड) में एक उसमान मियाँ जी हैं। उसको हजरत की शक्ति प्राप्त है। वह जो कहता है अथवा करता है, पत्थर की लकीर है। हम वहाँ गए। एक बार तो भाई को कुछ आराम मिला। मगर शीघ्र ही रोग ने विकराल रूप धारण कर लिया। अब कि बार हम उसको लिकाता ले गए। यह सन् 1989 की बात है। कोलिकाता में उसका उपचार तो सन्तोष जनक चला मगर मेरा भ्राता जिन्दगी की जंग हार गया।

बुलबुल उड़ जाती है – फूल सूख जाने के बाद।
अपने छोड़ जाते हैं – भाग्य फूट जाने के बाद।।

इस असहनीय शोक ने हमें अन्दर तक हिला दिया। दुख की गहराई में हमारे मन में यह नाराजगी भी बैठ गई कि गुरु जी ने हमारा कुछ नहीं किया अन्यथा हमारा प्राण प्यारा भाई बच जाता। डिपरेशन में हम इतने डूब गए कि एक संशय और हमारे सिर पर चढ़ कर बोलने लगा कि भाई कैलाश तो गया सो गया, कहीं उस जादू टोने से परिवार के किसी अन्य सदस्य को ना

कुछ हो जाए। वह होता है कि :–

विचार आते हैं – विचारक नहीं आते।

बे सहारों को – कोई सहारे नहीं आते।।

तात्पर्य यह है कि हमारी इंटेलीजेंसी पर इमोशन हावी हो गया। इसी विषाद के चलते हम पुन: उसी तान्त्रिक मियाँ जी की शरण में पहूँचे। मेरे भाई का समाचार सुन कर मियाँ जी बहुत नाराज हुआ। कहने लगा कि मैं ऐसा कभी नहीं होने देता और यदि तुम उसके संस्कार से पहले यहाँ आ जाते तो मैं डंके की चोट के साथ उसे खड़ा कर देता........खैर अब भविष्य के लिए मैं किसी भी अनहोनी न होने की गारन्टी लेता हूँ........। उसके इस प्रकार आँसु पौंछने से हमारे हृदय का दर्द तो समाप्त नहीं हुआ। फिर भी उसके बुलाने पर कई बार जाते रहे। उसके पास हजूम लगा रहता था। वह सिगरेट का चेन स्मोकर था। भेंट–पूजा के नाम पर कुछ नहीं लेता था। अपनी उदर पूर्ती के लिए कसाई का व्यापार करता था। उस क्षेत्र में उसकी तूती बोलती थी.......।

एक बार उसके पास मेरा नं. रात्रि के लगभग दो बजे आया। जब वह मुझ से वार्तालाप करने लगा तो यकायक थर्रा उठा। हाथ कांपने लगे जबां लड़खड़ा गई, पसीना–पसीना हो गया। फिर कुछ संभल कर रुहानी वाणी से कहने लगा कि या अल्ला...... या खुदा....... ओ परवरदिगार..... या अल्ला–ताला.... मेरी गुनाह बकश दे....... रहम कर मालिक....मेरी गुजारिस है........ मैं मर जाउँगा या अल्ला हो......भक्त कबीर के शब्दों में यों कहिए :–

मैं अपराधी जन्म का–मेरा नख सिख भरा शरीर।

तुम दाता दुख भंजना – हर लो मेरी पीर ।।

फिर मुझे संकेत करते हुए नम्रता पूर्वक बोला कि जनाब आली मैं बीस हजार जीन्न (आत्मा) का शाह हूँ और मेरे जैसे अनेक बादशाहों के शहन शाह हजरत ख्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती अजमेर (राजस्थान) में हैं और अजमेरी चिश्ती से बड़े पीर दस्तगी गौश पाक बगदाद (इराक) में हैं। मगर या अल्ला.........आपके खुदा तो हमारे इराकी शहनशाह के भी शहनशाह हैं। या खुदा रहम करे....गर मैंने तुम्हें बुलाया होता तो आज मैं खाक हो जाता–भस्म हो जाता। मेरे जहाँ पनाह (इब्बू जी) मेरी इबादत है, तू मेरे पास कभी मत आना। मैं गुजारिश करूँ तब भी मत आना। मैं तेरे शहनशाहों के शहनशाह के दीदार (दर्शन) का शुक्रगुजार रहूँगा। मैं उन्हें सजदा (जमीं पर मस्तक रख कर) नमन करता हूँ। मेरे अखनूर, तू उन्हीं की हजूरी बजा, वही सब का बेड़ा पार करेंगे। जा.......चला जा, खुदा हाफीज। जान बची लाखों पाए।

अब हमें लगा कि जीवन विपत्ति की ही परिभाषा है। हमें कोई कुछ, कोई कुछ समझाता था कि :–

संकट को देख वीर घबराया नहीं करते।

कुछ ऐसे फूल हैं जो मुरझाया नहीं करते।।

फिकर मत कर बावरे – मत कर मन में सोच।
गुरु देव का ध्यान कर – छोड़ सभी संकोच।।

इस प्रकार हमारे विषाद ने करवट ली और सहसा दोई कर जोरि स्वतः गुरु चरणों में स्तुती के स्वर चलने लगे कि :–

अन जानें में गरुवर हम यह भूल करते रहे।
धूल चेहरे पर थी पर आईना साफ करते रहे।।

अन्तर्यामी तुम एक हो – आत्मा के आधार।
जो तुम छोड़ो हाथ तो – कौन उतारे पार।।

हे गुरुदेव भगवान हम आपके अपराधी हैं। हमारे अपराध क्षमायोग्य भी नहीं हैं मगर आप सर्व शक्तिमान, अन्तर्यामी, पतित पावन, अमृत के श्रोत, भव भय हारी हैं। हे ब्रह्माण्ड नायक सूर्य के समान तेजस्वी, गंगा से निर्मल, पृथ्वी से सहन शील एवं स्वयं नारायण हैं। आपको कोटि–कोटि प्रणाम। त्राही माम्......। आ गई लहर शिवा के मन में – हम पर गुरु जी की ऐसी खुमारी चढ़ी कि हमने अपनी करकेन्द्र बाजार वाली दुकान बन्द करके सूरत में प्रोपर्टी का काम कर लिया। इससे मुझे संवाई आश्रम में नव निर्माण कार्य के नाम पर गुरु शरण में सेवा का पर्याप्त सौभाग्य नसीब हो जाता है। श्री मान जी, अहेतुकी अनुकम्पा के सिंगार सरोवर तो बहुत–बहुत गहरे हैं। क्या बताऊँ और क्या नहीं बताऊँ ? कुल मिला कर गुरु मुख होना ही एक सार है।

ना कुछ हम हँस कर सीखे – ना कुछ हम रोकर सीखे हैं
जो कुछ थोड़ा सा सीखे – वो गुरु के हो कर सीखे हैं।।
जय गुरुदेव !

चरणों में अपने बिठाये रखना

– विजय शर्मा, सहारनपुर

तर्ज – ले तो आये हो हमें सपनों

हम तो आये हैं प्रभु जी धाम संवाई
तेरे दर्श की कब से आस लगाई
चरणों में अपने बिठाये रखना ......प्रभुजी–प्रभुजी .....

हम तेरे बालक चरणों के पुजारी
सारा जगत है तेरे दर का भिखारी
कब से खड़े द्वार पे, प्रभु जी दर्शन दो–2
सारे जगत को प्रभु जी तेरा सहारा
तेरे बिना नहीं कोई जग में हमारा
पापों से हम को बचाये रखना ....प्रभुजी ....प्रभुजी .....

ग्राम संवाई में प्रभु ने डेरा लगाया
पति तों को भी भव पार कराया
देवी देवता द्वार पे तेरे शीश झुकायें–2
नित नई लीला प्रभु जी रोज दिखाते
शक्ति संचार करके सिद्ध बनाते
ज्ञान की ज्योति जगाये रखना ......प्रभुजी .....प्रभुजी .....

शिव स्वरूप प्रभु रामलाल देवा
प्रभु चन्द्र ने पाई चरणों की सेवा
गुरु वचनों का पालन करते जीवन बीता–2
खोये जीवों का प्रभु ने भाग्य जगाया
योग मार्ग का हमें पथिक बनाया
सेवा में 'विजय' को लगाये रखना .....प्रभुजी ......प्रभुजी .....

चित्तरूपी रोग की चिकित्सा के उपाय तथा मनोनिग्रह से लाभ

– विजय शर्मा, सहारनपुर

श्रीवसिष्ठजी कहते हैं– श्रीराम! यह चित्त एक महान् रोग है। इसकी चिकित्सा के लिये एक बहुत बड़ी औषध है, जो अभीष्टसाधक, निश्चितरूपसे लाभ पहुँचाने वाली, परम स्वादिष्ट और अपने ही अधीन है; उसे बताता हूँ, सुनो। राग के विषयभूत बाह्य विषयोंका परित्याग करके परमात्मचिन्तनरूपी अपने ही पुरुषार्थमय प्रयत्नसे चित्तरूपी बेतालपर शीघ्र विजय पायी जाती है। जो अभीष्ट वस्तु (बाह्य विषयभोग)– को त्याग कर चित्त के राग आदि रोगों से रहित हो स्वस्थ रहता है, उसने अपने मन को उसी प्रकार जीत लिया है, जैसे मजबूत दाँतों वाला हाथी खराब और कमजोर दाँत वाले हाथी को जीत लेता है। स्वसंवेदन (आत्मा या परमात्मा के निरन्तर चिन्तन)– रूपी प्रयत्न से चित्तरूपी बालक का पालन किया जाता है, अर्थात् उक्त यत्न से उसके राग और चपलता आदि रोगों की चिकित्सा करके उसे स्वस्थ बनाया जाता है। उसे अवस्तु मिथ्या अथवा अनात्म वस्तु से हटाकर वस्तु (सत्य अथवा आत्मतत्त्व) – में लगाया जाता है तथा उसे बोध से सम्पन्न किया जाता है। जैसे बालक को प्यार या भय दिखाकर बिना प्रयत्नके ही इधर–इधर जहाँ चाहे लगाया जा सकता है, उसी प्रकार भावोंसे मन को भी अनायास ही अन्तरात्मा में लगाया जा सकता है। ऐसा करने में कठिनाई ही क्या है?

भविष्य में अभ्युदयरूपी फल को देने वाले सत्कर्म (समाधि के अभ्यास)– में लगे हुए मन को अपने पुरुषार्थ से ही चेतन परमात्मा के साथ संयुक्त करे। जो सर्वथा अपने अधीन और परम हितकर है, वह अभीष्ट वस्तु का त्याग रूपी वैराग्य जिसके लिये कठिन हो गया है, वह मनुष्य नहीं, विषयों का कीड़ा है। उसे धिक्कार है। जैसे कोई पहलवान किसी बालक को अनायास ही पछाड़ देता है, उसी प्रकार अपनी बुद्धि से अरम्य विषय–समूह में परम रमणीय पर ब्रह्म परमात्मा की भावना करके मन को बिना यत्न के ही जीत लिया जा सकता है। पौरुषरूपी प्रयत्न से चित्त को शीघ्र ही जीत लिया जाता है। जो चित्त को जीतकर उसके प्रभाव से रहित हो गया है, वह बिना किसी प्रयास के परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। अपने चित्त पर आक्रमण करके उसे वश में कर लेनामात्र जो सहजसाध्य और स्वाधीन कार्य है, उसे ही जो लोग नहीं कर सकते, वे पुरुष नहीं , गीदड़ हैं। उन्हें धिक्कार है। एकमात्र अपने पौरुष से ही सिद्ध होने वाला जो अभीष्ट वस्तु का त्याग रूपी मनोनिग्रह कर्म है, उसके बिना शुभगति नहीं हो सकती। अभीष्ट बाह्य विषयों का स्मरण न करना अथवा मनोवाञ्छित मोक्ष–सुखकी प्राप्ति कराना जिसका स्वरूप है, उस मुख्य साधन मनोनिग्रह के बिना गुरु का उपदेश, शास्त्र के

अर्थका चिन्तन और मन्त्र आदि सारे साधन या युक्तियाँ तिनकों के समान व्यर्थ हैं।

संकल्पों के परित्याग रूपी शस्त्र से जब चित्त रूपी वृक्ष का समूल उच्छेद हो जाता है, तब साधक सर्व–स्वरूप सर्वव्यापी शान्त ब्रह्मरूप हो जाता है। श्रीराम! जैसे दिग्भ्रम होने पर पूर्व में पश्चिम की प्रतीति होने लगती है और वह अनुभव के विपरीत बुद्धि उस समय बिलकुल स्थिर हो जाती है; परंतु विवेक रूपी पुरुष–प्रयत्न से उस भ्रान्त बुद्धि का भी शीघ्र ही निवारण किया जा सकता है, उसी तरह मन को भी वैराग्य रूपी पुरुष–प्रयत्न से शीघ्र ही जीता जा सकता है। मन में उद्वेग का न होना राज्य आदि सम्पत्तिका मूल कारण है। उद्वेग या उकताहट न होने से ही जीव को अपने मन पर विजय प्राप्त होती है, जिससे तीनों लोकों पर विजय पाना तृण के समान सहज हो जाता है। जो नराधम अपने मन के निग्रह में भी समर्थ नहीं हैं, वे व्यवहार–दशाओं में व्यवहार का निर्वाह कैसे कर सकेंगे ? मैं पुरुष हूँ, मरा हूँ, उत्पन्न हुआ हूँ और जी रहा हूँ इत्यादि कुदृष्टियाँ चंचल चित्त की वृत्तियाँ ही प्रतीत होती हैं, जो बिना हुए ही प्रकट हुई हैं। यहाँ न तो किसी की मृत्यु होती है और न कोई जन्म ही लेता है। मन स्वयं ही अपने मरण का तथा लोकान्तरगमन का संकल्पमात्र से अनुभव करता है। जो नित्य सत् सबका हितकारी, मायामयी मलिनता से रहित और सर्वव्यापी परमात्मा हैं, उनमें चित्त का लय हुए बिना मुक्ति का दूसरा कोई उपाय नहीं है। इस बात का ऊपर–नीचे तथा अगल–बगल के लोकों में रहने वाले तत्त्वदर्शी विद्वानों ने बारम्बार विचार किया है और सब–के–सब इसी निश्चय पर पहुँचे हैं कि चित्त की शान्ति के सिवा मुक्ति का दूसरा कोई उपाय है ही नहीं। ऋत, सत्य, व्यापक और निर्मल ज्ञान का हृदय में उदय होने पर मन के लय होने मात्र से परम शान्ति प्राप्त हो जाती है। यदि आपातरमणीय विषयों को तुम–जैसे विद्वान् ने अरमणीय वस्तुओं की कोटि में समझ लिया है, तब तो मेरा विश्वास है कि तुमने चित्त के सारे अङ्ग काट डाले हैं। यह सामने दिखायी देने वाला जो वह (पिता से उत्पन्न) शरीर है, वह मैं हूँ और यह जो घर, खेत आदि धन है, यह सब मेरा है! यह 'मैं' और 'मेरा' ही मन है। यदि यह मैं और मेरेपन की भावना न की जाय तो उससे मन उसी तरह कट जाता है, जैसे हँसिया से तृण। जैसे शरद्–ऋतु में आकाश में बिखरे हुए बादलों के टुकड़े वायु द्वारा उड़ा दिये जाते हैं, उसी प्रकार मैं और मेरेपन की कल्पना या भावना न करने से मन भी उड़ा दिया जाता है– नष्ट कर दिया जाता है। इसलिये कोई विज्ञ पुरुष जैसे अपने बालक पुत्र को अच्छे कर्म में लगाता है, उसी तरह विद्वान् पुरुष को चाहिये कि वह अपने मन को कल्याण में लगाये। जिसका नाश होना कठिन है तथा जो नूतन या बालक न होकर सयाना और दर्प से भरा हुआ है, उस मनरूपी सिंह को, जो संसार का विस्तार करने वाला है, जो लोग मार डालते हैं, वे निर्वाणपद का उपदेश देने वाले महात्माजन इस संसार में धन्य हैं। उनकी सदा ही विजय होती है। भले ही प्रलय काल के प्रचण्ड पवन प्रवाहित हों, चारों समुद्र एक में मिलकर एकार्णव हो जायँ और बारहों सूर्य एक साथ तपने लगें; परंतु जिसका मन शान्त हो गया है, उस पुरुष की कभी कोई हानि नहीं होती।

'विज्ञातारमरे केन विजानीयात'

विज्ञातारमरे केन विजानीयात - विज्ञाता को कैसे जानोगे ? ज्ञाता को कोई जान नहीं सकता, क्योंकि यदि वह समझ में आने योग्य होता , तो वह कभी ज्ञाता न रह जाता । और यदि तुम आइने में अपनी आँखों का बिम्ब देखो, तो तुम उन्हें अपनी आँखें नहीं कह सकते, वे कुछ और ही हैं, वे बिम्बमात्र हैं । अब बात यह है कि यदि यह आत्मा - यह अनन्त सर्वव्यापी पुरुष साक्षी मात्र हो , तो इससे क्या हुआ ? यह हमारी तरह न चल फिर सकता है, न जीता है, न संसार का संभोग कर सकता है। यह बात लोगों की समझ में नहीं आती कि जो साक्षी स्वरूप है, वह किस तरह आनन्द का उपभोग कर सकता है। ''हे हिन्दुओ, तुम सब साक्षी स्वरूप हो, इस मत से तुम लोग निष्क्रिय और अकर्मण्य हो गये हो'' - यह बात लोग कहा करते हैं। उनको इस बात का उत्तर यह है, 'जो साक्षी स्वरूप है, वही वास्तव में आनन्दोपभोग कर सकता है।' अगर कहीं कुश्ती लड़ी जाती है तो अधिक आनन्द किन्हें मिलता है? - जो कुश्ती लड़ रहे हैं उन्हें या जो दर्शक हैं उन्हें ?

इस जीवन में जितना ही तुम किसी विषय में साक्षी स्वरूप हो सकोगे उतना ही तुम्हें उससे अधिक आनन्द मिलता रहेगा। यथार्थ आनन्द यही है और इस युक्ति से तुम्हारे लिए अनन्त आनन्द की प्राप्ति तभी सम्भव है, जब तुम इस विश्व ब्रह्मांड के साक्षी स्वरूप हो सको। तभी मुक्त पुरुष हो सकोगे। जो साक्षी स्वरूप है, वही निष्काम भाव से स्वर्ग जाने की इच्छा न रख, निन्दा-स्तुति को समदृष्टि से देखता हुआ कार्य कर सकता है। जो साक्षी स्वरूप है, आनन्द वही पा सकता है, दूसरा नहीं। अद्वैतवाद के नैतिक भाग की विवेचना करते समय उसके दार्शनिक तथा नैतिक भाग के अन्तर्गत एक और विषय आ जाता है, वह मायावाद है। अद्वैतवाद के अन्तर्गत एक एक विषय के समझने में ही वर्षों लग जाते हैं और व्याख्या करने में महीनों लग जाते हैं, इसलिए इसका मैं उल्लेख मात्र ही करूँगा। इस मायावाद को समझना सभी युगों में बड़ा कठिन रहा है। मैं तुमसे संक्षेप में कहता हूँ, मायावाद वास्तव में कोई वाद या मत विशेष नहीं है, वह देश, काल और निमित्त की समष्टि मात्र है - और इस देश, काल, निमित्त को आगे नाम-रूप में परिणत किया गया है। मान लो समुद्र में एक तरंग है। समुद्र से समुद्र की तरंगों का भेद सिर्फ नाम और रूप में है, और इस नाम और रूप की तरंग से पृथक कोई सत्ता भी नहीं है, नाम और रूप दोनों तरंग के साथ ही हैं, तरंगें विलीन हो जा सकती हैं; और तरंग में जो नाम रूप हैं, वे भी चाहे चिर काल के लिए विलीन हो जायें, पर पानी पहले की तरह सम मात्रा में ही बना रहेगा। इस प्रकार यह माया ही तुममें और हममें, पशुओं में और मनुष्यों में, देवताओं और मनुष्यों में भेदभाव पैदा करती है। सच तो यह है कि यह माया ही है जिसने आत्मा को मानो लाखों प्राणियों में बाँध रखा है और उनकी परस्पर भिन्नता का बोध नाम और रूप से ही होता है। यदि उनका त्याग कर दिया जाय, नाम और रूप दूर कर दिये जायें, तो वह सदा के लिए अन्तर्हित हो जायेगी, तब तुम वास्तव में जो कुछ हो, वही रह जाओगे। यही माया है।

फर यह कोई सिद्धान्त भी नहीं है, केवल तथ्यों का कथन मात्र है।

- स्वामी विवेकानन्द

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उत्कृष्ट का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________

____

____

अहम् सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधाः भावसमन्विता।।

(गीता 10/8)

मैं (भगवान) ही सबका उत्पत्ति-स्थान हूँ और समस्त जगत् की मुझ (भगवान) से ही प्रवृत्ति होती है, यह मानकर बुद्धिमान् भावसम्पन्न पुरुष अपने (सब कर्मो द्वारा सर्वत्र सदा) मेरा ही भजन सेवन करते हैं।

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा